अमृत की खोज

डॉ० रामकुमार वर्मा

अमृत की खोज

एक वैज्ञानिक नाटक

अमृत की खोज

[वैज्ञानिक नाटक]

डॉ० रामकुमार वर्मा

श्री होमी जहाँगीर भाभा की
करुण स्मृति में

प्रकाशकीय

नये युग में हिन्दी नाटकों की मूल प्रेरणा भारतेन्दु ने ही दी, परन्तु उसे भारतीय इतिहास से गम्भीर रूप में जोड़ने का कार्य प्रसाद ने किया। उनका क्षेत्र पूरे नाटकों तक सीमित रहा, किन्तु एकांकी की दिशा में डॉ० रामकुमार वर्मा को सर्वोपरि प्रतिष्ठा मिली। भारतेन्दु, प्रसाद और रामकुमार की नाट्य-त्रिवेणी से साहित्य में अप्रतिम कीर्ति-कथा बहती है।

यद्यपि 'सम्राट्' की धारणा मध्यकालीन दिखायी देती है, तथापि जैसे सनेही को 'कवि-सम्राट्' और प्रेमचन्द को 'उपन्यास-सम्राट्' कहा गया, वैसे ही डॉ० रामकुमार वर्मा को 'एकांकी-सम्राट्' का विरुद प्रदान किया गया और प्रसिद्ध हो गया। निश्चय ही एकांकी के क्षेत्र में उनका कार्य प्रेरणाप्रद और अनुकरणीय रहा है। अभिनेयता और आधुनिकता उनके नाटकों की प्रधान विशेषताएँ रही हैं। दृश्यकाव्य तथा श्रव्यकव्य दोनों की समग्र उपलब्धि के लिए उन्हें पद्मभूषण उपाधि प्रदान की गयी। वे मेरे गुरु हैं, अत: यह उनकी विशेष कृपा है।

'अमृत की खोज' उनके विज्ञान-प्रेरित तीन नाटकों का लोकप्रिय संग्रह है जिसके इस नये संस्करण का श्रेय हिन्दुस्तानी एकेडेमी को प्राप्त हुआ है। संग्रह का नाम अन्तिम एकांकी पर आधारित है, पर इसमें 'उत्सर्ग' और 'चन्द्रलोक' भी कम रोचक नहीं हैं। जिन समस्याओं को रचनाकार ने उभारा है, वे जीवन के केन्द्र से सीधे जुड़ी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि साहित्य के भीतर बैठती दिखायी देती है।

मुझे विश्वास है कि दर्शक और पाठक, दोनों इसका स्वागत करेंगे। विद्यार्थियों के लिए तो यह प्रेरक रहा ही है।

जगदीश गुप्त
सचिव

संदर्भ

पिछले चालीस वर्षों से मैंने नाटक-साहित्य की विविध विधाओं में अनेक प्रयोग किये हैं और जीवन के अनेक संदर्भों में नाटकों की उपयोगिता सिद्ध करने की चेष्टा की है। अपने देश की संस्कृति को अधिकाधिक स्पष्ट करने के लिए जिन कथा-सूत्रों की आवश्यकता थी, उन्हें प्राचीन और आधुनिक संदर्भ-ग्रन्थों से एकत्र करने का प्रयास किया है। दर्शन, धर्म, इतिहास, समाज और व्यक्ति की समस्याओं को विविध नाटक एवं एकांकियों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए मैंने यथासंभव उनका समाधान प्रस्तुत किया है। इन नाटकों में ऐतिहासिक नाटक सब से अधिक लिखे गये क्योंकि उनके द्वारा मैं अपने देश के स्वर्णिम संदर्भों को अधिक सुविधा के साथ प्रस्तुत कर सकता था। पात्रों को उनकी भावभूमि प्रस्तुत कर संघर्ष की परिस्थितियों में उनका अंतर्द्वन्द्व अधिक मुखरित हो सकता था।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। मानव ने अपनी बुद्धि से ऐसी रहस्यपूर्ण परिस्थितियों का आविष्कार किया है जिनसे वह भौतिक दृष्टि से अधिकाधिक शक्तिशाली बन सका है। उसकी बौद्धिक प्रखरता ने आकाश-मंडल के ग्रहों और नक्षत्रों के अनेक रहस्य उद्घाटित कर दिये हैं; और अब तो मानव चन्द्र पर भी विजय प्राप्त करने के लिए गतिशील हो गया है।

इस दृष्टिकोण को लेकर मैंने वैज्ञानिक नाटक लिखने का भी प्रयत्न किया है और मेरे साहित्यिक नाटकों के समकक्ष इस वैज्ञानिक नाटक की स्थिति भी समझी जानी चाहिए।

विज्ञान का संसार तथ्यों का संसार है और इसमें कल्पना का संयोजन

उसी सीमा तक संभव है जहाँ तक कि तथ्य के विकास की संभावना अनुमानित की जा सकती है। जो वस्तु जैसी है, उसे उसी रूप में चित्रित करना और उनके अंगों अथवा अंशों का विश्लेषण तर्क द्वारा उपस्थित करना एक वैज्ञानिक की प्रथम मान्यता है। वस्तु का रूप, उसका संगठन, उसकी विशेषता, उसके लक्षण और उसमें अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करना विज्ञान का दृष्टिकोण है। इसी के आधार पर नियम बनते हैं और उनके द्वारा किसी सत्य की उपलब्धि होती है। इसीलिए विज्ञान न केवल तथ्यों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषता प्रकट करता है, वरन् वह ऐसे अन्तर्व्यापी सत्य की घोषणा करता है जिससे संसार में निहित रहस्य प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस परिस्थिति में भी यह विचारणीय है कि विज्ञानपरक संसार तथ्य से अनुबंधित होते हुए भी जब हमारे समक्ष प्रत्यक्ष होता है तो वह कुछ न कुछ मानसिक प्रक्रिया उत्पन्न करता ही है। यह मानसिक प्रक्रिया तथ्यात्मक संसार में निहित उन संभावनाओं को बल देती है जो हमारी भावना और कल्पना से सीधा संबंध रखती है। एक वैज्ञानिक यह भले ही कह दे कि पानी वस्तुतः हाइड्रोजन के दो अंश और ऑक्सीजन के एक अंश के युग्म में विद्युत्-तरंग से प्रतिफलित होता है, तथापि पानी का जीवन के लिए जो महत्त्व है, वह इस वैज्ञानिक तथ्य से अधिक जीवंत है। वह जीवन के लिए कितना शीतल और अस्तित्व के लिए कितना उपादेय तत्त्व है। वनस्पति-विज्ञान में एक पुष्प भले ही 'मोनोजीनिया' के वर्गक्रम में हो, किन्तु वह पुष्प देवता के चरणों में समर्पित होकर अथवा किसी प्रेयसी के कंठ में पड़कर कितना महत्त्वपूर्ण निर्माल्य बन जाता है, यह अनुभूति की चरम सीमा है। इसलिए विज्ञान भी अपनी समस्त भौतिक उपलब्धियों में रहस्य और सौंदर्य की अनंत अनुभूतियों को जन्म देता है।

कोई भी वस्तु अपनी उपयोगिता एवं अस्तित्व-बोध में एक विशिष्ट अर्थ समाहित किये रहती है। यह अर्थ तथ्य से संबंधित है। जितना भी

वस्तु-परिवार है, वह उससे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संबंध रखता है। उस अर्थ की संभावनाएँ जब मन को स्पर्श करती हैं तो भावनाओं और कल्पनाओं का जन्म होता है। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि जहाँ विज्ञान का संसार वस्तु की वास्तविकता में सीमित है, वहाँ वह उस वास्तविकता से निष्पन्न भावनाओं और सौंदर्य-जगत् में भी असीम है। इसीलिए जब साहित्य में सत्य के उद्‌घाटन की आवश्यकता अनुभव होती है, तब विज्ञान सत्य से अनुबंधित भावनाओं और कल्पनाओं का एक विशाल ब्रह्मांड निर्मित कर देता है। मेरी कल्पना में वैज्ञानिक साहित्य वैसा ही है जैसा पुराण-पुरुष का वामन-रूप में अवतार। उसका एक पैर तो सत्य के स्तम्भ की भाँति भूमि पर स्थित है और दूसरा पैर सौंदर्यजनित भावना और कल्पना के तीनों लोकों को नाप कर संवेदना-रूपी बलि के मस्तक पर स्थापित हो जाता है।

मैंने जब वैज्ञानिक नाटकों का सृजन किया, तो यही पृष्ठभूमि मेरे समक्ष रही है। विज्ञापन से उपलब्ध सत्य को मेरुदण्ड मानकर मैंने उसे निष्पन्न मनोविज्ञान की विस्तृत प्रगतिशीलता में संवेदना को जगा देने का प्रयत्न किया है। सत्य जैसे मरुस्थल की भाँति पड़ा हो और उसमें भावना की मंदाकिनी प्रवाहित हुई हो। मैंने यह भी ध्यान रखा है कि यह मंदाकिनी मरुस्थल में कहीं खो न जाय या उसका प्रवाह सत्य की बालुका-राशि में शुष्क न हो जाय। इन नाटकों में बुद्धिपरक आविष्कारों की उपलब्धि है। साथ ही उन उपलब्धियों से उत्पन्न मनोविज्ञान को झकझोर देने वाली क्रिया और प्रतिक्रिया है जिसमें आशा, निराशा, कुण्ठा, उत्साह, प्रेम और निर्वेद के चित्र उपस्थित किये हैं। विविध परिस्थितियों की क्रमबद्धता हृदय के भावों को उसी प्रकार परिवर्तित करती है जिस प्रकार पूर्णिमा से अमावस्या और अमावस्या से पूर्णिमा हो सकती है।

इस नाटक में एक स्थायी पात्र डॉ० शेखर हैं जो विविध प्रकार के आविष्कारों में निष्णात हैं। उनके सामने अनेकानेक परिस्थितियाँ आती हैं

जिनमें उनका प्रेम, कौतुक एवं उत्साह प्रतिबिंबित होता है। वे वि
क्षेत्र में एक अद्वितीय अन्वेषक हैं और उसके अन्वेषण से ऐसी आश्च
परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिनमें विविध पात्र आवर्त की भाँति परि
होते हैं। उनके संस्कार और जीवनगत अनेक प्रकार के प्रभाव ह
क्रान्तियों को जन्म देते हैं।

मेरी आस्था है कि इस विज्ञान के युग में हमारा देश भी अग्रसर होग
वह ऐसे आविष्कार करेगा जिससे विश्व आश्चर्यचकित हो जाय
अभूतपूर्व उपलब्धियाँ प्राचीन काल में इस देश के तपस्वियों से
द्वारा प्राप्त हुई थीं, उनके समानान्तर उपलब्धियाँ आज हमारे
वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त की जानी चाहिए। आज अमेरिका ने चन्द्र के ध
पर पदार्पण किया है, किन्तु इसके पूर्व इस नाटक के नायक डॉ० शेख
चन्द्र-मण्डल में अपना यान स्थापित कर दिया था। भले ही मेरी क
में इस चन्द्र-अभियान को डॉ० शेखर के द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया गया
तथापि मुझे आशा है कि यह उपलब्धि भविष्य में किसी भारतीय वैज्ञा
द्वारा अवश्य प्राप्त की जा सकेगी। हमारे साहित्य में जिस 'अमृत
उल्लेख है, उसे भारत का वैज्ञानिक डॉ० शेखर भविष्य में इसी पृथ्वी
प्राप्त करेगा।

इन शब्दों के साथ में मैं यह वैज्ञानिक नाटक इस देश की वैज्ञानिक सा
को अर्पित करता हूँ।

—रामकुमार व

'साकेत', इलाहाबाद।
२६ जनवरी, अर्धकुम्भ
१९७१।

क्रम

नाटक के पात्र

पुरुष—

शेखर : एक महान् वैज्ञानिक

दिलीप : चिकित्साशास्त्र में निपुण डाक्टर

विनय : डा० शेखर का सहायक

चन्द्रपुरुष : चन्द्रलोक का निवासी मानव

सुधीर : डा० शेखर का सेवक

स्त्री—

छाया देवी : डा० शेखर की उपेक्षित प्रेमिका

मंजुल : डा० शेखर की दुलारी बेटी (?)

चन्द्रनारी : चन्द्रलोक की मानवी

श्रीमती सत्या : डा० दिलीप की पत्नी

अंक १

उत्सर्ग

□

इस अंक के

पात्र

□

डा० शेखर : एक महान् वैज्ञानिक

विनय : डा० शेखर का सहायक

छाया देवी : डा० शेखर की उपेक्षित प्रेमिका

मंजुल : डा० शेखर की पुत्री

सुधीर : डा० शेखर का सेवक

There is no death. That seems so is transition.
This life of mortal breath,
Is but a suburb of the life elysian.
Whose portals we call death.

—LONGFELLOW.

• •

उत्सर्ग

: डॉ० शेखर का अध्ययन-कक्ष। दीवारों पर स्त्री और पुरुष के अनेक रेखाचित्र सजे हुए हैं। सामने खिड़की, जिसके आधे भाग पर एक नीला परदा पड़ा हुआ है, आधे भाग से आकाश और तारे दीख रहे हैं। एक कोने में टेबुल और कुर्सी। टेबुल पर कुछ पुस्तकें और मासिक-पत्र हैं। दूसरे कोने में एक चौकोर तख्त, जिस पर स्वच्छ वस्त्र बिछा हुआ है। तख्त से हटकर डॉ० शेखर का एक 'एपराटस' रखा हुआ है, जिसके निर्माण में वे अनेक वर्षों से यत्नशील हैं। 'एपराटस' में लाल और नीली रोशनी के बल्ब लगे हुए हैं। कमरे में दो छोटी आलमारियाँ हैं, जिनमें पुस्तकें सजी हुई हैं, अधिकतर आत्म-विद्या से सम्बन्ध रखनेवाली हैं। आर्थर कॉनन डायल और आलिवर लॉज के ग्रंथों का रैक भी आलमारी पर रखा हुआ है। कमरे में स्वच्छता और सादगी। जगह्-जगह् अगर-बत्ती जल रही हैं, जिनसे धुआँ उठकर समस्त वातावरण को सुगन्धित कर रहा है। कमरे के बीचो-बीच एक 'मेंटलपीस', जिस पर दो चित्र रखे हुए हैं—एक मंजुल और दूसरा छाया देवी का। 'मेंटलपीस' के नीचे एक अँगूठी है, जिसमें लाल अंगारे दहक रहे हैं। एक ओर खूँटी पर

नीला ओवरकोट टँगा हुआ है। उसके नीचे लकड़ी का एक 'पेडास्टल' है। एक 'बेसिन' में अंग्रेजी के कुछ कटे हुए अक्षर रखे हैं। पीछे की ओर लगे हुए लाल बल्ब से वे अक्षर चमक सकते हैं। कमरे में एक क्लाक टँगी हुई है जिसमें सात बजकर पन्द्रह मिनट हुए हैं।

जाड़े के दिन हैं। डॉ० शेखर इस समय भी बाहर जाने के वस्त्र पहने हैं। हल्के हरे रंग का सूट है। उनकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की होगी, लेकिन कार्य करने से वे अधिक आयु के ज्ञात हो रहे हैं। मुख पर कार्यशीलता की रेखाएँ हैं। किसी समय सुन्दर थे, यह उनके नेत्र और कपोल-गह्वर से ज्ञात होता है। अष्टभुजी शीशे का बेकमानी चश्मा। बाल कुछ अस्त-व्यस्त। टाई की 'नाट' ढीली होकर एक ओर खिसक गई है। मुख पर गंभीरता और अँगुली में अँगूठी। जैसे उनकी सारी सौंदर्यप्रियता सिमटकर अँगूठी में आ गई है और शरीर गंभीर और शुष्क-सा रह गया है। वे अत्यन्त स्पष्ट और धीरे बोलते हैं।

उनके समीप ही उनका असिस्टेंट विनय खड़ा हुआ है। वह एक साधारण सूट पहने हैं। उनकी उम्र लगभग २५ वर्ष की होगी। वह अत्यन्त संजीदे ढंग से बोलते हैं। कार्य में सावधान और व्यवहार में व्यवस्थित।

डॉ० शेखर अपने 'एपराटस' के एक भाग को ठीक करने के अनंतर रूमाल से अपना मुख पोंछते हुए आगे बढ़ते हैं।:

शेखर : सब लोक इकट्ठे हो गए ?

विनय : जी हाँ ।

शेखर : इस समय कितना बजा होगा ?

विनय : **क्लाक की ओर देखकर** : सात बज के पन्द्रह मिनट ।

शेखर : **दुहराते हुए** : सात बज के पन्द्रह मिनट । विनय, समय तो एक गति से चलता रहता है नदी के बहाव की तरह । न उसमें घण्टे हैं और न मिनट । एक गति है—एक प्रवाह । हमीं लोगों ने उस समय को काट-काटकर टुकड़े कर दिये हैं । यह घण्टा है—यह मिनट । न कहीं घण्टा है, न हैं मिनट । क्या ? : **प्रश्नसूचक दृष्टि** :

विनय : जी ।

शेखर : और इस अनन्त समय में हमें लहर की तरह बढ़ना चाहिए । बिना किसी बंधन के—बिना किसी रोक के । लेकिन यह शरीर हमें बढ़ने नहीं देता । स्थूल है न !

विनय : जी ।

शेखर : और अगर हम लोग किसी तरह अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को अलग करना सीख लें तो विनय, जानते हो क्या होगा ? : **जोर देकर** : बोलो, क्या होगा ?

विनय : मैं नहीं कह सकता ।

शेखर : क्या होगा ? ये घड़ियाँ तोड़ डाली जायँगी—नष्ट कर दी जायँगी ! ये क्लाक, ये टाइमपीस, पाकेटवाच, ये रिस्टवाच, ये बटनवाच ! कुछ न रहेगा ।

विनय : जी ।

शेखर : और हमारा सूक्ष्म शरीर समय से मिल जायगा । वैसा ही गतिशील, वैसा ही प्रवहशील । जिस तरह रेडियो के संगीत की एक लहर लंदन से चलकर यहाँ मसूरी में उसी क्षण सुनाई पड़ जाती है, उसी तरह यह मनुष्य लहर बनकर

उसी क्षण में लंदन पहुँच जायगा। लंदन, न्यूयार्क, टोकियो। सूक्ष्म शरीर से वह विश्वव्यापी हो जायगा। सर्वकालीन, सर्वत्र। समय को काटने-छाँटने की आवश्यकता नहीं रह जायगी।

विनय : जी !

शेखर : इस स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर है, इसका पता जानते हो कैसे लगता है ?

विनय : बतलाइए।

शेखर : इसका पता हमें अपनी साँस से लगता है। यह साँस ! देखो यह साँस। : नाक के सामने हाथ ले जाते हैं। :

विनय : जी।

शेखर : यह साँस कितने वर्षों से चल रही है। सोते-जागते रुकने का नाम ही नहीं लेती। क्यों विनय, तुम्हें साँस लेने में कभी थकावट मालूम हुई है ?

विनय : जी नहीं !

शेखर : कभी तुमने सोचा है कि इतने वर्षों से साँस ले रहे हैं, दो-एक दिन आराम कर फिर साँस लेना शुरू करेंगे ? एक ही काम करने से थकावट आती है न ? 'मानोटनी' फिर एक तरह से साँस लेने में थकावट क्यों नही मालूम पड़ती ? शरीर के अन्य अवयवों की भाँति साँस लेने में भी थकावट होनी चाहिए !

विनय : इस स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर है।

शेखर : हाँ, सूक्ष्म शरीर है...आकाश है।

विनय : जी।

शेखर : यह आकाश हमारे शरीर के कण-कण में फैला है, शरीर से घिरे रहने के कारण उसे 'घटाकाश' कह लो। तो जिस तरह आकाश की हवा कभी नहीं रुकती, हमारे शरीर की साँस

नहीं रुकती। जब तक कि उसके बहाव के रास्ते खराब नहीं हो जाते, वह बहती है। बहाव के रास्तों को कभी पुराना न होने दो, हजारों वर्षों तक साँस लो। योगियों का हाल पढ़ा है? नाड़ी-साधन से वे हजारों वर्षों तक जीते थे। उनकी साँस जंगल की हवा के समान स्वतंत्र बहती थी। हजारों वर्षों तक बहती रही और बहती रहेगी। देखो, वह 'एपराटस' : **एपराटस के पास जाकर उसकी एक नली छूकर** : देखो, यह साँस लेने की नली है।

विनय : **विनम्रता और संकोच के स्वरों में** : यह ठीक है। लेकिन.... आप : **रुकते हुए** : बाहर जानेवाले थे? साढ़े सात होने जा रहे हैं, सब लोग आपका रास्ता देख रहे होंगे।

शेखर : **अस्थिर होकर** : ओह! मैं तो बिलकुल ही भूल गया। यह समय हमेशा काँटे की तरह चुभता रहता है। यह सात बज गए, यह आठ बज गए। विनय, मैं कोशिश कर रहा हूँ कि स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को अलग कर सकूँ और फिर दोनों को जोड़ सकूँ।

विनय : आप सब कुछ कर सकते हैं। आप संसार के बहुत बड़े 'साइंटिस्ट' हैं। लोग आपसे यही तो सीखना चाहते हैं।

शेखर : लेकिन मुझे आज फुर्सत नहीं है, विनय। मंजुल छह महीने बाद घर आई है। मेरी बेटी! भीतर बैठा हुआ पिता का हृदय आज बेटी के पास रहना चाहता है। वह बेचारी छह महीने के बाद मिली है। मेरी मंजुल!

विनय : अब तो वे यहीं रहेंगी। आप तो उनके साथ सारा समय व्यतीत करेंगे। लेकिन बीस रोज के बाद आपको कुछ फुर्सत मिली है। आपकी खोज के विषय में सुनने के लिए लोग उत्सुक हैं। आपका 'स्टडी सर्किल' उन्हीं पुराने प्रयोगों को कर

रहा है। उसे आगे बढ़ने के लिए दो-तीन बातें बतला दीजिए, फिर जल्दी लौट आइएगा।

शेखर : कितनी देर लगेगी ?

विनय : यही पन्द्रह-बीस मिनट। आपकी खोज के विषय में जानने को लोग उत्सुक हैं। यदि आज आप नहीं गये तो पन्द्रह-बीस दिनों तक आपको फुर्सत नहीं मिलेगी।

शेखर : **सोचते हुए मंद स्वर में** : हाँ, एक बार काम में लगने पर फिर तो मैं कहीं जा नहीं सकता। अब यह खोज, जो मैंने एक महीने में की है, बिलकुल नई है।

विनय : कौन सी ?

शेखर : यही कि अपने 'एपराटस' से मैं मरे हुए व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर को फिर एक आकार दे सकता हूँ। 'एपराटस' वर्षों की मेहनत से तैयार हुआ है।

विनय : **आश्चर्य से** : ओह! यह तो संसार की सबसे बड़ी खोज होगी।

शेखर : जो हो, मैंने मृत्यु के उस पार देखने की कोशिश की है! जीवन का आदर्श ही यह है कि जीवन के उस पार देखा जाय! मृत्यु तो सूक्ष्म जीवन का प्रवेश-द्वार है। मन शरीर से अलग होकर भी कार्य कर सकता है और शरीर के नष्ट होने पर भी वह गतिशील है। तुम्हें आश्चर्य होगा, यदि मैं कहूँ कि मृत्यु में पीड़ा नहीं है। मृत्यु तो जीवन का एक मोड़ है। जिस प्रकार एक चौड़ा रास्ता जंगल में एक पगडंडी होकर छिप जाता है और हमें नहीं दीख पड़ता है, उसी प्रकार मृत्यु के बाद जीवन-पथ भी रहस्य के वन में प्रवेश कर जाता है। सूक्ष्म शरीर तो स्थूल शरीर का निखरा हुआ रूप है। जैसे सूर्य-मंडल से दिन फैला हुआ है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर से यह स्थूल शरीर है।

यह सूक्ष्म शरीर हमसे वैसा ही जुड़ा है, जैसे रात्रि के अन्तिम प्रहर से दिन। आज का विज्ञान सिर्फ़ 'मैटर' की खोज करता है, 'स्पिरिट' की नहीं। मैंने 'स्पिरिट' की खोज की है।

विनय : **आश्चर्य से :** आपने बहुत बड़ा काम किया है!

शेखर : मैं जब तक मृत्यु का पूरा रहस्य संसार को न बतला दूँगा, तब तक आराम नहीं करूँगा।

विनय : आप महापुरुष हैं! आप संसार का बहुत उपकार करेंगे।

शेखर : उपकार होगा—ऐसा मेरा भी विश्वास है। मेरी खोज एक दीप-स्तम्भ होगी, जो भटकती हुई आत्माओं की जीवन-नौका का पथ-प्रदर्शन करेगी।

विनय : **सौम्य हँसी के साथ :** अभी तो आप हम लोगों का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। तो आप अभी चलेंगे? मैं 'स्टडी सर्किल' को क्या सूचना दूँ?

शेखर : **सोचते हुए :** अच्छा चल रहा हूँ। फिर न जाने कब समय मिले! लेकिन इस समय मैं केवल 'क्लेयरवायंस' की कुछ बातें ही बतला सकूँगा। समय मेरे पास कम है।

विनय : **नम्रता से :** जैसी आपकी इच्छा।

शेखर : **निश्चय के साथ :** अच्छा, तो मैं फिर चलता हूँ। तुम जाकर उन लोगों से कह दो कि मैं आ रहा हूँ। ड्राइवर से कहना कि मोटर लाये!

विनय : बहुत अच्छा। **: प्रस्थान :**

: डॉक्टर शेखर कुछ देर तक अपना 'एपराटस' देखते हैं, फिर टेबुल पर पड़े हुए कुछ काग़ज़ उठाकर भौंहें सिकोड़े हुए पढ़ते हैं। निश्चयात्मक ढंग से सिर हिलाकर कोट पहनते हैं। ऑलिवर लाज की एक पुस्तक खोज निकालते हैं और पृष्ठ उलटते

हुए पढ़ते हैं। फिर उस पुस्तक में काग़ज़ का निशान लगाकर मंजुल को पुकारते हैं। :

मंजुल : मंजुल !

: "आई पिताजी" की आवाज़ ! मंजुल का प्रवेश। सोलह वर्षीया युवती, देखने में सरल और सुन्दर। क्रीम रङ्ग की साड़ी, जिस पर नीला बार्डर। उससे उसका गौर वर्ण और भी निखर आया है। माथे पर छोटी लाल बिंदी। चकित हरिणी की भाँति कमरे में प्रवेश करती है। :

शेखर : मंजुल ! तू क्या काम कर रही थी ?

मंजुल : पिताजी ! सितार पर नया तार चढ़ा रही थी। मैं तो समझती थी कि मेरे जाने के बाद आप सितार सँभालकर रक्खेंगे, लेकिन आपने मेरी तरह मेरे सितार को भी भुला दिया।

शेखर : वाह, तो क्या तेरा सितार तेरी तरह ही है ?

मंजुल : और नहीं तो क्या ! सितार पर नये तार चढ़ाकर आ रही हूँ— देखिए, मेरी बोली में खुशी का राग है या नहीं ?

शेखर : और अगर कोई तार टूट जाय तो ?

मंजुल : पिताजी ! मन टूट जायगा। मैं बोल भी नहीं सकूँगी।

शेखर : ओहो, कविता भी करने लगी !

मंजुल : मैं कविता कैसे कर सकती हूँ ? आजकल की कविता के लिए उच्छ्वास, वेदना, आँसू की आवश्यकता होती है, सो वह सब मेरे पास नहीं है। मैं तो खुश रहना जानती हूँ।

शेखर : अच्छी बात है। मेरी खोज खतम हो जाय, फिर तेरे सितार और तेरी आवाज़ की तरंगों का कम्पन निकाल कर मिलान

करूँगा; एक कम्पन से दूसरे कम्पन को कहाँ तक सहायता मिलती है।

मंजुल : आपकी खोज में हम दोनों कहीं रेडियो न बन जायँ।

शेखर : कोई बुरी बात तो होगी नहीं। तू यहाँ से चली जायगी, तब भी मैं तेरी आवाज़ सुन सकूंगा।

मंजुल : **भरी आवाज़ :** आप तो यही चाहते हैं कि मैं यहाँ से चली जाऊँ तो अच्छा है।

शेखर : **मनाते हुए स्वर में :** वाह, तू यह क्या कहती है? तेरे जाने के बाद इन छह महीनों में मेरी क्या हालत रही, यह मैं ही जानता हूँ। प्यारी बेटी जैसे मेरा सुख अपने साथ ही ले गयी। काम से लौटने पर जब तेरी याद आती थी तो मालूम होता था, जैसे किसी ने मेरे घर से सारी हवा खींच ली है और मेरा दम घुट रहा है। लाचार होकर तेरी याद भूलने के लिए काम में लग जाना पड़ता था।

मंजुल : तो इस बहाने आपका काफ़ी काम हो गया।

शेखर : **बेबसी के स्वर में :** हाँ, हो तो गया, पर मेरी बेटी मंजुल के बिना तो मैं जैसे खुद एक एपराटस बन गया। सच कहता हूँ, बेटी! तेरे बिना मुझे अपनी ज़िन्दगी भी अच्छी नहीं लगती।

मंजुल : तो अब आप मुझे कहीं नहीं भेजेंगे?

शेखर : कहीं नहीं। तू तो खुद अपनी माँ की सहायता के लिए नौकरों को साथ लेकर पुरी चली गई, नहीं तो क्या मैं तुझे जाने देता? तेरी इच्छा देखकर मैं चुप हो गया, नहीं तो क्या मैं अपनी बेटी को कहीं जाने देता?

मंजुल : तो आप अभी कहाँ जा रहे हैं?

शेखर : मैं थोड़ी देर के लिए बाहर जा रहा हूँ। अभी आ जाऊँगा।
: **वात्सल्य से :** मंजुल! अभी आ जाऊँगा।

मंजुल : **मुंह बनाकर दुलार के स्वर में** : पिताजी ! मैं भी चलूंगी।

शेखर : साथ चलेगी ? अच्छा, चल। **सोचकर** : लेकिन....नहं मत चल।

मंजुल : छह महीने बाद आई हूँ। फिर भी साथ न चल !

शेखर : मैं तुझे अपने साथ जरूर ले चलता। लेकिन मंजुल 'स्टडी सर्किल' जा रहा हूँ।

मंजुल : कैसा स्टडी सर्किल ?

शेखर : मैंने जो खोजें की हैं, उनके भिन्न-भिन्न रूपों पर काम करने लिए मेरे कुछ विद्यार्थी हैं। उन्हें आगे की बातें बतलानी मेरा असिस्टेण्ट खबर देने गया है कि मैं आ रहा हूँ। तब जाना ही पड़ेगा !

मंजुल : मेरे साथ जाने से क्या आपका जाना रुक जायगा ?

शेखर : **समझाते हुए** : रुक तो नहीं जायगा। लेकिन देख, यह 'एपराटस'। इसे मैंने वर्षों की मेहनत से तैयार किया है अगर इसमें कुछ गड़बड़ हो जाय, तो मंजुल ! मेरी सारी मेह खराब हो जायगी। यह मेरे सारे जीवन की तपस्या है। इसका एक कार्क भी इधर से उधर होना नहीं देख सकत तू यहीं रह, मेरे 'एपराटस' के पास। मैं खुद इससे अलग हो नहीं चाहता। कहीं तेरी पूसी उछल-कूदकर कुछ तोड़-फोड़ तो मैं कहीं का न रहूँगा। मंजुल ! मेरी सारी मेहनत बेक जायगी।

मंजुल : **बुरा मानकर** : आप मेरी पूसी को गाली क्यों देते हैं ? ऐसी शैतान नहीं कि आपका 'एपराटस' तोड़ दे। वह भी एक वैज्ञानिक है। खोज में लगी रहती है—दूध-दही जै पवित्र वस्तुओं को। 'एपराटस' के पास जाने से उसे अप चीज तो मिलेगी नहीं।

शेखर : धन्य है तेरी पूसी ! लेकिन मेरा 'एपराटस'....

मंजुल : **बीच में ही** : आपका 'एपराटस' ! इससे क्या होता है ?

शेखर : मंजुल इस 'एपराटस' से मैं क्या नहीं कर सकता। इसके द्वारा मैं मरे हुए आदमी के सूक्ष्म शरीर को एक आकार दे सकता हूँ।

मंजुल : **कुछ शंकित होकर** : मरे हुए आदमी को !

शेखर : हाँ, मरे हुए आदमी से बातें कर सकता हूँ।

मंजुल : बातें कर सकते हैं ?

शेखर : हाँ, यह काम संसार के किसी वैज्ञानिक ने नहीं किया। मेरे हाथों यह पूरा होना चाहता है ! मैंने मनुष्य की मृत्यु का रहस्य खोज लिया है। मरने के बाद यह बोलनेवाली चीज़ क्या हो जाती है ?

मंजुल : मैं छह महीने बाहर रही। मुझे क्या पता था कि पिताजी ने संसार को बदल दिया है। अब की बार छह महीने बाहर रहूँ तो आप शायद किसी को मरने भी न दें।

शेखर : लेकिन मरने में क्या बुराई है ! मैंने तो यह सिद्ध कर दिया है कि जो मर गए हैं, वे वास्तव में मरे हुए नहीं हैं।

मंजुल : **अधिकारपूर्वक** : तब तो मैं यही सिद्ध करूँगी कि जो जी रहे हैं, वे वास्तव में नहीं जी रहे हैं।

शेखर : शैतान लड़की ! तू हँसी समझती है ! लेकिन यह तय बात है कि मृत्यु का रहस्य खोलने के बाद मृत्यु का भय जाता रहेगा। मृत्यु तो वैसी ही है, जैसे मैं अपना कोट उतारकर अलग रख देता हूँ। और तब हमारा वास्तविक मनुष्य शरीर की सीढ़ी से उतरकर सच्चे संसार में प्रवेश करता है। इससे जानती है, क्या होगा ?

मंजुल : **कौतूहल से** : क्या होगा ?

शेखर : जितने रोनेवाले हैं, उन्हें सुख और सन्तोष मिलेगा।

मंजुल : तब तो सुख और सन्तोष पाने के लिए रोना जरूरी है।

शेखर : अधिकार के स्वर में : मैं तुझसे बात नहीं करूँगा। मंजुल तू बहुत नटखट हो गई है।

मंजुल : अच्छा पिताजी ! अब मैं बहुत गम्भीर बन जाऊँगी। अब नहीं हँसूँगी।

शेखर : सौम्य भाव से : हँसने से तुझे कौन रोकता है ? मैं यही तो सिद्ध करना चाहता हूँ कि यह जीवन सदैव हरा-भरा है। सुन्दर है, मधुर है, जैसे चाँद की हँसी, फूल की सुगन्ध, पक्षी का कलरव, नदी की लहर, जो हमेशा आगे बढ़ना जानती है। फैलती है, तो जैसे पलक खुल रही है ! और वह पल भर में संसार का तट छू लेती है।

मंजुल : ठीक है पिताजी ! लेकिन फिर संसार के लोग रोते क्यों हैं ?

शेखर : मूर्ख हैं वे। मरने का अर्थ नहीं जानते ! मरने के बाद मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है। वह अच्छे कार्य अच्छे ढंग से कर सकता है।

मंजुल : सचमुच ?

शेखर : मैंने यंत्रों की सहायता से मरे हुए लोगों से बातें की हैं—वे लोग मेरे पास आये हैं। इसी घर में—इसी जगह !

मंजुल : आपको डर नहीं लगा ?

शेखर : मैं मंजुल तो हूँ नहीं, जो डर जाऊँ ?

मंजुल : लेकिन पिताजी ! मरे हुए लोगों से बातें करने में कैसा लगता है ?

शेखर : बहुत अच्छा ! जैसे तुझसे बातें करने में लगता है।

मंजुल : वाह, तब तो मेरे मरने और जीने में अन्तर ही नहीं रह गया ?

शेखर : अंतर क्या है ? शरीर की रेखा मिट जाय तो यह संसार और वह संसार एक ही है ! शरीर तो जैसे भीगा कपड़ा है जो

आत्मा से लिपट गया है और अवसर मिलते ही आत्मा उस शरीर को फेंककर अपने सच्चे तेज में आ जाती है। या यों समझ लो कि एक शैतान बालक की तरह आत्मा शरीर के दरवाज़े को खोलकर बाहर निकल भागती है। इसी को 'मरना' कहते हैं!

मंजुल : मैं मरने से बहुत डरती हूँ। मरते समय जी न जाने कैसा होता होगा!

शेखर : बहुत अच्छा लगता है। जीव की सारी चिंताएँ छूट जाती हैं। मालूम होता है, जैसे किसी पानी भरनेवाली ने घर पहुँचकर अपने सिर का घड़ा उतारकर नीचे धर दिया है या जैसे पुजारी मंदिर में पहुँच गया है। तभी तो इन आत्माओं से बात करने में अच्छा लगता है। हाँ, जो आत्महत्या करके मरता है, वह अपनी गति में पिछड़ जाता है और वह अपने सूक्ष्म संसार में एक पत्थर की तरह गिरता है। मैंने सूक्ष्म शरीरों से बात करके यह जान लिया है।

मंजुल : मैं तो मरे हुए आदमी से बातें भी न करूँ। जाने कैसे होते होंगे वे लोग! हवा की तरह—धुआँ की तरह!

शेखर : बहुत कुछ इसी तरह! लेकिन अपने एपराटस से मैंने उन्हें ऐसा रूप दिया है कि कोई पहिचान ही नहीं सकता कि वे मरे हुए हैं या जिन्दा हैं। ऐसा मालूम होता है, वे हमारे प्रतिदिन के मिलनेवालों में से ही हैं।

मंजुल : आश्चर्य से : अच्छा, देखने में कुछ अन्तर ही नहीं मालूम होता! यह कैसे हो सकता है?

शेखर : यही तो मेरी खोज है!

मंजुल : ओह, बड़ी विचित्र खोज है! आपने मेरी उत्सुकता और बढ़ा दी है! अच्छा, आप स्टडी-सर्किल से....

शेखर : बात काटकर : ओह, मैं तो जाने की बात बिल्कुल ही भूल

गया ! तूने अच्छी याद दिलाई ! सब लोग मेरा रास्ता
रहे होंगे !

मंजुल : तो फिर आप जल्दी लौट आएँगे !

शेखर : हाँ, यही २०-२५ मिनट में। मोटर से क्या देर लगती है
दस मिनट आने-जाने के समझ लो और पंद्रह मिनट ब
करने के।

मंजुल : जल्दी ही आइएगा !

शेखर : अच्छी बात है। तो फिर मैं जाता हूँ। तुम एपराटस देख
रहना।

स्वीकारात्मक सिर हिलाती है। डॉ० शेखर जाते हैं। :

मंजुल : **पुकारकर** : पिताजी !

शेखर : **लौटते हुए** : क्या है ?

मंजुल : **हँसते हुए** : आपने सूट तो पहन रक्खा है, लेकिन मोज़े
पहने ही नहीं।

शेखर : **लज्जित स्वर में अपना पैंट कुछ ऊपर उठाए हुए** : अरे,
तो भूल ही गया ! सब बातें भूल जाता हूँ। खैर, यों ही चल
जाऊँगा। : **सोचकर** :...अच्छा, लाओ पहिन लूँ।

मंजुल : आपने कहाँ रख दिये हैं ?

शेखर : देख लो, यहीं कहीं होंगे मेज़ या कुर्सी पर।

मंजुल : मेज़ या कुर्सी पर ? घर में बहुत-सी खूँटियाँ तो हैं। या फि
वार्डरोब में रख दिया कीजिए।

शेखर : अब रख दिया करूँगा। अभी तो देख लो।

मंजुल : देखती हूँ। : **मंजुल कुर्सी से गद्दे हटाकर और टेबुल के
कागज़ समेटकर देखती है। :**

शेखर : जाने कहाँ रख दिये हैं ! **चारों ओर दृष्टि फेकते हैं। कभी
अपना सिर खुजलाते हैं, कभी कमर पर हाथ रखते हैं, एकाएक
चौंककर** : अरे, ये तो मेरे कोट की जेब में हैं। **कमर प**

हाथ रखा तो जेब में कुछ मालूम हुआ। : **निकालते हुए** : ये हैं मोज़े। : **फटे हुए मोजे निकालते हैं** :

मंजुल : वाह, कितनी अच्छी जगह है मोज़े रखने की! आपका कोट तो एक चलता-फिरता वार्डरोब है।

शेखर : भूल जाता हूँ, मंजुल। काम के ध्यान में मैं अपने आपको भूल गया हूँ।

मंजुल : पिताजी! मैंने एक पुस्तक में पढ़ा था कि एक वैज्ञानिक महोदय ने कोट के ऊपर कमीज़ पहन लिया था।

शेखर : **अपनी ओर देखते हुए** : मैंने तो नहीं पहना? **स्वस्थ होकर** : नही, मेरा कोट ठीक है। : **कोट के बटन खोल कर और** कोट के नीचे यह कमीज है।

मंजुल : **हँसती हुई** : नहीं, आपका कोट-कमीज़ तो अपनी जगह पर है, लेकिन लाइए मोज़े पहना दूँ। कहीं आप भूल से इन्हें पैर के बजाय हाथों में न पहन लें।

शेखर : **भौंहें कसते हुए** : तू मुझे चिढ़ाती है, शैतान लड़की? जा, मैं पहन लूँगा। : **डॉ० शेखर जूते के ऊपर मोजे पहिनने लगते हैं** :

मंजुल : **हँसी रोककर** : पिताजी, मोज़े की रगड़ से कहीं जूता फट न जाय।

शेखर : **जूते के ऊपर से मोजा खींचते हुए तथा भूल स्वीकार करते हुए** : आ, मंजुल! मेरे साथ तेरा रहना बहुत ज़रूरी है। :

जूते उतारकर मोजा पहनते हैं। फिर थोड़ी देर जूते की ओर तेखते हैं। जूतों को उठाकर बदलते हैं कि कहीं उलटे तो नहीं पहिन रहे हैं। फिर सावधानी से पहिनकर जाते हैं। :

शेखर : **जाते हुए** : मंजुल! थोड़ी देर में आता हूँ। : **प्रस्थान** :

मंजुल : **डॉ० शेखर के जाने की दिशा में देखती हुई** : संसार के विद्वान्

संसार के सबसे सरल आदमी होते हैं ! : लौटती है । पुकार-कर : सुधीर !

सुधीर : सरकार !

मंजुल : एक गिलास पानी ।

सुधीर : अच्छा सरकार ! मीठा ले आई ?

मंजुल : नहीं, सिर्फ पानी ।

सुधीर : बहुत अच्छा, सरकार ! : जाता है :

मंजुल : यहाँ-वहाँ देखती हुई 'एपराटस' के पास जाती है । : यह है एपराटस ! जाने कैसा है ! : हाथ से ग्लास ट्यूब्स छूती है :

: सुधीर पानी लेकर आता है । मंजुल पानी पीती है । :

मंजुल : रूमाल से मुँह पोंछती हुई : तू जानता है, सुधीर ! यह : एपराटस की ओर संकेत करती है : क्या है ?

सुधीर : उत्साह से : सरकार, ई ईपारटुअस है । एहि माँ तो सरकार अस करतब किहे हैं कि भगवानो नाहीं कइ सकत : गर्व से : ई बात है ! आप तो छै महीना माँ आई हन । एहि का तमासा अबहिन जानत नाहीं । एहि का तमासा तो सरकार ! हम देखिन हैं : गर्व की मुद्रा :

मंजुल : तू जानता है, यह कैसे काम करता है ?

सुधीर : सरकार ! चालू होत बखत तो यहि के देखे ते डिर लागत है । कर घुमाय देई त बिजुरी अस चमचमाय उठत है । एकरे जराये माँ माचिस की जरूरत नाहीं पड़त । और ऊ बड़का लोटा अस : संकेत करता है : जो बना है, ओहि माँ लाल पानी पहिले तो सनसनात है, ओहि के बाद खदबदाय के ऊपर चढ़ जात है । और जादू अस वलकन लागत है । फुन खाल पाय कै कबहूँ ई कोने माँ, कबहूँ ऊ कोने माँ बिलाय जात है।

मंजुल : इससे होता क्या है ?

सुधीर : **हाथ उठाकर कान पकड़ते हुए** : अब ई तौ सरकार हम कहि नाहि सकत । बड़े सरकार आप आँखी मूंद के बइठ जात हैं औ कुछ कहै लागत हैं । हम ते कहि देत हैं—सुधीर, हियन से तुम जाओ ।

मंजुल : सुधीर ! पिताजी कहते हैं कि आदमी मरकर भी नहीं मरता ।

सुधीर : अब सरकार ई तौ हम जानत नहीं । हाँ, मुदा सरकार ! जब ते बड़े सरकार ई खटोला अस ईपारटुअस बनाइन है तब ते ओही बात ऊ निकाल लिहें होई । सरकार ! बड़े सरकार माँ तो विद्या अस समाय गई है जइसे स्याही सोख माँ सियाही ।

मंजुल : हँसकर : जा तू कुछ नहीं जानता ।

: मंजुल 'एपराटस' के भागों को देखती है । एक स्विच दबाने से लाल बल्ब जलता है । उसके साथ ही हरा बल्ब भी जल उठता है । लाल बल्ब तो थोड़ी देर बाद बुझ जाता है, हरा जलता रहता है :

मंजुल : **अन्यमनस्क होकर** : कुछ समझ में नहीं आता । पिताजी से पूछूंगी । : **'एपराटस' के पास से हटकर** : जा सुधीर ! जरा, मेरा सितार ले आ । पिताजी के आने तक उसी को बजाऊँ ।

सुधीर : सरकार ! ऊ टुनटुन करै वाला ।

मंजुल : **हँसकर** : हाँ रे वही । : **सुधीर जाता है** : मेहनती है, पर है बेवकूफ़ । पिताजी के पास ऐसे आदमियों की गुज़र अच्छी हो जाती है । :**सुधीर सितार लेकर आता है** :

सुधीर : सरकार ! ई बिजुरी का तार त न होय ?

मंजुल : बिजली का तार ? बेवकूफ़ ! जा, अन्दर बैठ । सब बातों में इसे बिजली सूझती है । : **सुधीर चला जाता है** :

: मंजुल कमरे के बीचोंबीच आकर सितार ठीक करती है। फिर तख्त पर बैठकर थोड़ी देर बजाती है। दरवाज़े पर 'खटखट' की आवाज़ होती है। :

मंजुल : सितार बंद कर : कौन है ?

— : बाहर से शब्द : मैं हूँ, छाया देवी !

मंजुल : प्रसन्नता से उठकर सितार कोने में रखते हुए : ओह, आई ! आ जाइए, दरवाज़ा खुला हुआ है।

एक ३५ वर्षीया गौरवर्ण स्त्री का प्रवेश सफेद साड़ी पहने हुए है, मुखमुद्रा गम्भीर। :

मंजुल : नमस्ते। आइए, बैठिए।

: छायादेवी नमस्कार कर बैठती हैं। पास की कुर्सी पर मंजुल भी बैठ जाती है। :

छाया : तुम सितार बजा रही थीं। मुझे संगीत बहुत अच्छा लगता है। सुनकर यहाँ चली आई।

मंजुल : संकुचित होकर : अच्छा, मैं इतना अच्छा बजा लेती हूँ !

छाया : हाँ, फिर मैंने सोचा, चलो तुम्हें देख भी आऊँ ! मालूम हुआ, तुम आ गई हो।

मंजुल : हाँ, कल रात ही आई हूँ। बाबूजी ने लिखा था कि तुम्हें देखने की इच्छा है। चली आई। बाबूजी मुझे बहुत प्यार करते हैं।

छाया : मैं जानती हूँ।

मंजुल : उत्सुकता से : आप कैसे जानती हैं ?

छाया : यों ही। तुम तो छह महीने बाद आई हो ?

मंजुल : हाँ, ठीक छह महीने बाद।

छाया : तुम्हारी माँ तो अच्छी तरह से हैं ?

मंजुल : हाँ, अच्छी तरह हैं। बीच में उनकी तबियत कुछ खराब हो गई थी। पुरी के सभी बड़े-बड़े वैद्यों और डाक्टरों को बुलाना पड़ा,

लेकिन सभी बातों की व्यवस्था पिताजी ने कर दी थी। ओह, पिताजी हम लोगों को थोड़ा भी कष्ट नहीं होने देते। वे तो जैसे हम लोगों की इच्छा पहले ही जान लेते हैं। कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती!

छाया : तुम्हारी माताजी नहीं आईं ?

मंजुल : वे भी आनेवाली थीं। लेकिन पुरी की आब-हवा से उन्हें बड़ा फ़ायदा हुआ। वे अब पन्द्रह-बीस दिनों में आ जायँगी। उनके पास पिताजी ने चार नौकरों की व्यस्वथा कर दी है। कोई कष्ट नहीं है। हाँ, आजकल आप यहीं हैं ?

छाया : मुझे इस जगह से कुछ मोह-सा हो गया है। कुछ दिनों के लिए बाहर जाती भी हूँ तो फिर लौटने की तबीयत हो आती है।

मंजुल : छह महीने पहले जब मैं आपसे मिली थी तो आप कह रही थीं कि हृषीकेश जाऊँगी। फिर आप गई थीं ?

छाया : मैं तो हो भी आई। चार-पाँच दिन हुए लौटी हूँ। बहन का इम्तहान है न ? बेचारी बड़ी चिन्ता में है। उसकी वजह से जल्दी ही लौटना पड़ा।

मंजुल : क्या करूँ, मेरी भी इच्छा है कि मैं हृषीकेश देख आऊँ। पिताजी कहते थे, बड़ी अच्छी जगह है। वे तो कई बार वहाँ हो आये। कैसी जगह है ?

छाया : बहुत अच्छी। गंगा की पवित्र धारा बहती है, जैसे स्वर्ग ही पानी बनकर बह रहा है। जब उसमें स्नान करती हूँ तो मालूम होता है, मेरे सारे शरीर में गंगाजल ही बह रहा है। और प्रकृति के दृश्य तो ऐसे हैं, जैसे ईश्वर ने समुद्र की हरी लहरों को तरतीब के साथ गूँथकर सजा दिया हो। तुम देखो तो यहाँ आना भूल जाओ। वहाँ जाने की तुम्हारी भी इच्छा है ?

मंजुल : हाँ, बहुत ।

छाया : तो अभी तो नहीं, चार महीने बाद तुम्हें ले चलूँगी । साथ चलना ।

मंजुल : ज़रूर । पिताजी भी चलेंगे ।

छाया : वे कैसे चल सकते हैं ? उन्हें अभी बहुत काम करना है । पिछले दो बरसों से तो वे कहीं गये ही नहीं ।

मंजुल : अच्छा, तब मैं ही आपके साथ चलूँगी ।

छाया : ज़रूर ।

मंजुल : बहुत अच्छा । आपसे अकस्मात् मिलना हो गया । मैं आपके यहाँ आनेवाली थी ।

छाया : कोई बात नहीं, मैं ही चली आई । तुम्हारे कमरे का हरा बल्ब दूर से ही दीख रहा था । मालूम होता था, जैसे शुक्र तारा चमक रहा है । मैं यहाँ से जा रही थी, सोचा शायद डाक्टर साहब हों । लेकिन तुम मिल गई । क्या डाक्टर साहब नहीं हैं ?

मंजुल : नहीं, वे अपने 'स्टडी-सर्किल' में गये हैं । बस, अब आने वाले ही होंगे । पिताजी ने न जाने कितने तरह के 'एपराटस' बनाये हैं । किसी में लाल उजेला होता है, किसी में हरा । मैं तो छह महीने बाद आई हूँ । मुझे कुछ मालूम ही नहीं । सैकड़ों नई बातें खोजकर निकाली हैं । कहते हैं, मरने के बाद आदमी मरता ही नहीं । मैं तो हैरत में हूँ ।

छाया : ठीक कहते हैं ।

मंजुल : आप भी मानती हैं ?

छाया : मानना कैसा, यह तो सही है । हमारे ऋषि-मुनि तो इसकी साधना में सैकड़ों ग्रन्थ लिख गए हैं ।

मंजुल : कहते हैं, मरने में कोई तकलीफ़ ही नहीं होती है !

छाया : कपड़े बदलने में क्या तकलीफ़ होती है !

मंजुल : आप भी पिताजी जैसी बातें कहती हैं। हमेशा मिलती रहती हैं, रोज-रोज की बातों का कुछ असर तो होता ही है।

छाया : जो समझो !

मंजुल : जाने दीजिए इन मरने-जीने की बातों को। आप कुछ जलपान करेंगी ?

छाया : नहीं, कुछ आवश्यकता नहीं है। अच्छा तो अब मैं जाऊँगी।

मंजुल : वाह, अभी आईं और अभी चलीं ! पिताजी से तो मिलीं ही नहीं।

छाया : फिर कभी मिल लूँगी। उनसे कभी तो मिलना हो ही जाता है।

मंजुल : कुछ देर और ठहरिए ना।

छाया : नहीं, अब और नहीं ठहर सकूँगी। बस तुम्हें देख लिया, तुमसे मिलना भी चाहती थी। फिर कभी आऊँगी।

मंजुल : अच्छी बात है। कभी-कभी आ जाया कीजिए।

छाया : हाँ, अवश्य। अच्छा नमस्ते !

: छायादेवी नमस्कार करके जाती हैं। मंजुल दरवाज़े तक पहुँचाकर लौटती है। :

मंजुल : **स्वगत :** छायादेवी ! पिताजी के बहुत निकट आकर भी बहुत दूर। **: सितार उठाकर :** अब नहीं बजाऊँगी। **: पुकारती है :** सुधीर !

: सुधीर का प्रवेश :

मंजुल : सुधीर ! ले जा, अब सितार नहीं बजाऊँगी। देख, सम्हाल कर रखना !

सुधीर : सरकार ! सबसे अच्छा तो हरमुनियाँ होत है। उठाय के बकस में रख लेव तो मालूम न होई कि ई बाजा है और सितार तो काँधे पै सींग अस उठा रहत है।

मंजुल : **कड़े स्वर में** : जा, शोर मत कर।

: **शीघ्रता में डा० शेखर का प्रवेश। कोट कंधे पर और अस्त-व्यस्त वेशभूषा। सुधीर चला जाता है।** :

शेखर : **आते ही** : मंजुल, मैं जल्दी आ गया। मेरा मन ही आज नहीं लगा। 'स्टडी-सर्किल' में कुछ बोलकर चला आया। बस दो-चार बातें ही कहीं। ज्यादा नहीं कह सका। तू जो यहाँ बैठी थी।

मंजुल : कोट पहनने का समय भी नहीं मिला!

शेखर : **कोट की ओर देखकर** : हाँ, कोट उतारकर प्रयोग बतला रहा था। चलते समय यों ही उठाकर रख लिया। : **'एपराटस' की ओर देखकर** : अरे, यह बल्ब कैसे जल गया! क्या तू 'एपराटस' देख रही थी? : **जाकर बल्ब 'आफ' करते हैं** :

मंजुल : हाँ, यों ही देख रही थी। मैं तो कुछ जानती भी नहीं।

शेखर : अच्छा, मेरे जाने के बाद कोई आया तो नहीं था?

मंजुल : आई थीं, छायादेवी जी?

शेखर : **आश्चर्य से** : छायादेवी!

मंजुल : हाँ, छायादेवी जी, मेरा सितार सुन के आ गई थीं। छह महीनों से मुझे देखा नहीं था, इसीलिए चली आई थीं। मैंने उनसे आपके आने तक रुकने के लिए कहा था, लेकिन वे चली ही गईं!

शेखर : तुम सितार....सितार बजा रही थीं!

मंजुल : हाँ, क्या करती बैठी-बैठी। लेकिन आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है?

शेखर : मंजुल...मंजुल!

मंजुल : कहिए, पिताजी !

शेखर : छायादेवी....छायादेवी तो दो महीने पहले मर गयीं।

मंजुल : आश्चर्य-विह्वल : मर....गयीं ?

शेखर : हाँ, तुम बाहर थीं। तुम्हें क्या पता ! दो महीने पहले उन्हें टाइफ़ायड हुआ, उसी में उनकी मृत्यु हो गयी !

मंजुल : दुःख और आश्चर्य : मृत्यु हो गयी ! !

शेखर : हाँ, बेचारी छायादेवी !

मंजुल : तो फिर वे यहाँ कैसे आ सकती हैं ?

शेखर : और कोई तो नहीं आया ?

मंजुल : क्या मैं छायादेवी को पहचानती नहीं ? मेंटलपीस पर उनका चित्र सैकड़ों बार देखा है ! मिलना भी बहुत बार हुआ है !

शेखर : सोचते हुए धीरे-धीरे : छा....या....दे....वी !

मंजुल : लेकिन मरने के बाद वे कैसे यहाँ आ गयीं ?

शेखर : 'एपराटस' की ओर संकेत करते हुए : इसी एपराटस के सहारे। यह जो हरा बल्ब है, यह प्रेतात्माओं को अपनी ओर खींचता है। इसी से खिंचकर छायादेवी का सूक्ष्म शरीर आया और मेरे 'एपराटस' से उन्हें मनुष्य का आकार मिल गया। फिर प्रेतात्माओं को संगीत अच्छा लगता है। तुम्हारे सितार को सुनकर वे सीधे कमरे में चली आईं।

मंजुल : घबड़ाकर : तो क्या मैंने प्रेतात्मा से बात की ! छायादेवी से नहीं ?

शेखर : छायादेवी के प्रेतात्मा से।

मंजुल : घबड़ाकर सोचती हुई : ओह, तब तो मैं भी मरी !

शेखर : संतोष देते हुए : बेटी ! कैसी बातें करती है ? तू कैसे मर सकती है ?

मंजुल : सोचते हुए : छायादेवी के प्रेतात्मा ने कहा था कि चार

महीने बाद वे मुझे लेकर हृषीकेश जायँगी। तब तो मेरी मृत्यु निश्चय ही चार महीने बाद हो जायेगी, पिताजी ! मैं भी मर जाऊँगी !

: गला भर आता है :

शेखर : मंजुल को हाथ का सहारा देते हुए : बेटी ! तू नहीं मर सकती !

मंजुल : शिथिल होकर : पिताजी ! मैं भी....मर....जाऊँगी !!

: अचेत हो जाती है। :

शेखर : दुःख के स्वर में : आह, मंजुल ! मंजुल !

: अचेत मंजुल को सँभालकर आर्म-चेयर पर लिटाते हैं। :

शेखर : आह ! यह क्या हो रहा है ! यह मेरी खोज का दुःखद परिणाम ही है ! मंजुल....मेरी मंजुल ! अब क्या हो ?

: अत्यन्त अव्यवस्थित होकर सुधीर को पुकारते हैं। सुधीर का प्रवेश :

शेखर : तू कहाँ था ?

सुधीर : सरकार ! भीतरै रहे। बीबीजी हुकुम दीन रहें ! मंजुल की ओर देखकर : बीबीजी अबहिन तें सोय गईं !

शेखर : विनय कहाँ है ?

सुधीर : सरकार ! बाहर आपन कमरवा माँ होइहैं।

शेखर : उन्हें इसी वक़्त अन्दर भेजो !

सुधीर : अच्छा सरकार ! : प्रस्थान :

शेखर : मंजुल बेहोश हो गई। : सोचते हुए : अब उसका सारा जीवन इसी तरह रोते हुए बीतेगा !....और वह सचमुच चार महीने बाद न रहेगी ! : सोचते हुए सिर पकड़कर :....आह, मेरी मंजुल ! मेरे कारण तुझे इतना कष्ट है ! चार महीने बाद, सिर्फ चार महीने बाद ! फिर अपने आदर्श की रक्षा कैसे कर

सकूँगा ! मेरी बेटी मंजुल !...छाया तू क्यों आई ! तूने क्यों मंजुल से बातचीत की ? अच्छा, मैं अभी देखूँगा । : ऑलिवर लॉज की पुस्तक निकालकर शीघ्रता में पृष्ठ उलटते हुए रुककर पढ़ते हैं : दि स्पिरिट मस्ट बी काल्ड इन व्हेन एनीथिंग कनैक्टेड विद् इट कम्स टु पास ।

: विनय का शीघ्रता से प्रवेश :

विनय : आपने मुझे बुलाया ?

शेखर : हाँ, इसी समय मैं 'स्पिरिट' कानटैक्ट करूँगा । 'एपराटस' का फ़ेस सदरली डाइरेक्शन में करो और मेरे खड़े होने का पैडास्टल ईस्टर्न डाइरेक्शन में । कमरे का टेम्परेचर साठ डिगरी फैरनहाइट हो । मेरा नीला ओवर-कोट मेरे पास रक्खो ।

विनय : बहुत अच्छा ।

शेखर : सी० एच० एच० ए० वाई० ए० के कटे हुए अक्षर बल्ब के सामने लगा दो ।

विनय : बहुत अच्छा ।

शेखर : कमरे में सुगन्धि की बत्तियाँ और लगा दो और एपराटस के इन्डिकेटर के सामने फूलदान रख दो !

विनय : बहुत अच्छा ।

शेखर : अपना काम करो ।

: विनय क्रमशः 'एपराटस' और अन्य वस्तुओं को ठीक करता है और डॉ० शेखर की कही हुई चीजों को व्यवस्थित ढंग से सजाता है । डॉ० शेखर इस बीच में खुली पुस्तक को पढ़ने में लीन हैं । :

शेखर : प्लस और माइनस के कानटैक्ट प्वाइंट्स अत्यन्त पास हों और इन्डिकेटिंग बैंड शू-हार्न के रूप में हो ।

विनय : बहुत अच्छा ।

: डॉ० शेखर फिर अपनी पुस्तक पढ़ने में लीन हो जाते हैं । विनय अंग्रेजी के कटे अक्षरों को बल्ब के सामने सजाता है और बल्ब के सामने Chhaya (छाया) शब्द दृष्टिगत होता है :

विनय : छाया की स्प्रिट बुलाएँगे ?

शेखर : हाँ, इस विषय में मैं अधिक बात नहीं कर सकता ।

विनय : बहुत अच्छा ।

शेखर : सब ठीक हो गया ?

विनय : जी : मंजुल की ओर देखकर : कुमारी मंजुल को....क्या सो रही हैं ?

शेखर : तेज़ी से : तुम जाओ, विनय ! और देखो, कोई इस कमरे में आने न पाये ।

विनय : जी । : प्रस्थान :

शेखर : उठकर नीला ओवरकोट पहनते हैं । फिर मंजुल के समीप आते हैं । मंजुल के ऊपर हाथ बढ़ाकर 'पास' देते हुए : मंजुल ! तू अब और भी गहरी नींद में सो जा !

: दो तीन बार 'पास' देते हैं । फिर मंजुल के सिर के नीचे तकिया ठीक करते हैं और 'एपराटस' के पास आकर स्विच आन करते हैं । लाल बल्ब जल उठता है । इसके बाद हरा बल्ब । ट्यूब में तरल पदार्थ शीघ्रता से गतिशील हो जाता है । दूसरा 'स्विच, आन करते हैं । एक दूसरा बल्ब जल उठता है । पीले रंग का तरल पदार्थ ट्यूब में उठने लगता है, फिर चक्राकार होकर ट्यूब में घूमने लगता है । वे समीप रखे हुए 'पेडास्टल' पर

खड़े हो जाते हैं । सब प्रकाश बुझ जाता है, केवल 'एपराटस' का हरा और लाल प्रकाश होता है । डॉ० शेखर आँख बन्द कर कहते हैं :

शेखर : धीरे-धीरे : प्रिय प्रकाश के अनन्त समूह ! मैं प्रार्थना करता हूँ—मुझे शक्ति दो कि मैं तुम्हारा स्वागत कर सकूँ। मेरे समीप आओ, जिससे मैं अनुभव कर सकूँ कि तुम्हारा आना मेरे लिए मंगलमय है ।....अन्धकार के गहन रहस्य को चीरकर मेरे सामने आओ, जिससे मैं भी प्रकाशमय हो जाऊँ ! बादलों को हटाकर आओ, तारों की किरणों पर पैर रखकर धीरे से उतरो कि मैं समझ सकूँ कि प्रकाश में और तुममें कोई अन्तर नहीं है ।....

मेरे यंत्र में साकार होकर मेरे सामने आ जाओ ।.... मैं भी स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर हूँ और इस प्रकार तुमसे वार्तालाप कर सकता हूँ ।....

मैंने तुम्हारी ज्योति और शक्ति धारण कर ली है ।.... मुझ पर श्वेत प्रकाश की वर्षा हो रही है और मेरे रोमरंध्रों में व्याप्त होकर मुझे प्रकाश से भर रही है ।....

जीवित अग्नि के चक्र मेरे चारों ओर घूम रहे हैं जिससे सूक्ष्म शरीर आकर्षित हो सकता है, पर मुझमें प्रवेश नहीं कर सकता ।....

मेरा हाथ उत्तरी ध्रुव की भाँति सत्य से उज्ज्वल है जिससे मैं तुम्हें बुला रहा हूँ ।....

मैं निद्रा-जैसी शांत समाधि में हूँ । मुझे आत्म-विश्वास है कि मैं पवित्र और शोकरहित हूँ ।....

स्वर्ग की प्रकाशमयी देवी छाया ! तुम आ....रही हो....आ रही हो....आ रही हो !....

: थोड़ी देर शांति रहती है, फिर दरवाज़े पर खट्-खट् का शब्द, फिर शब्द। छायादेवी पहले की श्वेत वेशभूषा में प्रवेश करती हैं। उनकी मुखमुद्रा और गंभीर है। डॉ० शेखर धीरे-धीरे अपने 'पेडास्टल' से उतरते हैं :

शेखर : मेरा तुम्हें नमस्कार स्वीकार हो !

: छायादेवी स्वीकारात्मक सिर हिलाती हैं। :

शेखर : **दृढ़ता से** : मैं यहाँ सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरा अनुभव नहीं आने दूँगा। तुम सत्य ही कहोगी, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। तुम छायादेवी हो ?

छाया : हाँ।

शेखर : श्रीमती छायादेवी हो, जिनकी मृत्यु दो महीने पहले हुई थी ?

छाया : हाँ, डाक्टर ! तुम मुझे जानते हो। तुम्हें उष्णता की लहर आती हुई जान पड़ी होगी। मैं छायादेवी हूँ !

शेखर : हाँ, उष्णता की लहर का अनुभव मैंने किया था। स्वर्ग की देवी को प्रणाम।

छाया : यह असत्य है। मैं अंतरिक्ष में हूँ, स्वर्ग में नहीं।

शेखर : क्षमा करो। तुम्हें यंत्र से कष्ट तो नहीं हुआ ?

छाया : नहीं, किंतु मैं बार-बार आने से प्रसन्न नहीं हूँ !

शेखर : इस समय थोड़ा कष्ट और स्वीकार करो ! मैं कुछ देर बातें कर सकता हूँ ?

छाया : अधिक से अधिक आधे मुहूर्त।

शेखर : अर्थात् ४५ मिनट ?

छाया : इससे किसी भाँति भी अधिक नहीं !

शेखर . मेरा तापक्रम ऋण है, तुम्हारा धन है। बातें कर सकोगी ?

छाया : हाँ ।

शेखर : कुर्सी पर बैठने का कष्ट स्वीकार करो ।

: छायादेवी कुर्सी पर बैठ जाती हैं :

शेखर : तुम अभी यहाँ आई थीं ?

छाया : हाँ ।

शेखर : कैसे चली आईं ? मैंने प्रयोग तो नहीं किया था !

छाया : शुक्र तारे की भाँति बल्ब का निमंत्रण मेरे लिए पर्याप्त था.... सितार का संगीत मेरे लिए पर्याप्त था....मंजुल का यहाँ रहना मेरे लिए पर्याप्त था ।

शेखर : तुमने मंजुल से बात की थी ?

छाया : हाँ ।

शेखर : तुमने मंजुल से यह क्यों कहा कि चार महीने बाद तुम उसे हृषिकेश ले जाओगी ?

छाया : तुम्हें दंड देने के लिए !

शेखर : क्या अंतरिक्ष में जाकर भी तुम्हारी प्रतिहिंसा नहीं गयी ?

छाया : लेकिन तुम्हें अपने कार्यों का पूरा प्रतिदान मिलना चाहिए ! तुमने मेरे प्रेम को ठुकराया । तुमने मुझे वचन देकर भी मुझसे विवाह नहीं किया । मैं कुछ नहीं कह सकी । वन में आग लगने पर ज़मीन पर पड़ी हुई लता की तरह जलती रही। लेकिन तुमने एक कण जल भी नहीं दिया । तुमने मुझे सपने की तरह हँसकर टाल दिया और मैं नींद के अँधेरे में तड़पती रही । तुम डॉक्टर ! संसार के उपकारी होने पर भी एक का उपकार नहीं कर सके ?

शेखर : मैं असमर्थ था, छाया !

छाया : चुप रहो, डाक्टर ! उस दिन तुमने मुझसे कहा था—छाया ! मैं तुम्हारी छाया की भी पूजा करूँगा । लेकिन तुम मेरे

शरीर की ओर भी देख नहीं सके । तुमने फूलों की माला उस दिन मुझे पहनाई थी। लेकिन उसके बाद तुमने शायद यह नहीं देखा कि उन फूलों के सूखने के पहले ही मैं सूखने लगी थी ।

शेखर : मैं क्या करता छाया ? मिलने के दूसरे दिन मेरे मित्र के मरने का समाचार मिला । मैं अपने मित्र को अपने से अधिक प्यार करता था । उस मित्र की विधवा पत्नी और लड़की मंजुल के पोषण का भार मैंने अपने कन्धे पर लिया । मैंने सोचा, तुमसे विवाह करने पर मैं अपने मित्र की विधवा पत्नी की सेवा नहीं कर सकूंगा । उस मित्र के परिवार में कोई न था । फिर मैं क्या करता छाया ? वह विधवा पत्नी स्वर्ग की देवी से भी अधिक पवित्र, मेरी सेवा स्वीकार कर सकी, क्या इस संसार में यह मेरे लिए सबसे बड़े सुख की बात नहीं है ? यह मंजुल मुझे मेरे प्राणों से अधिक प्रिय है । अपने प्रियतम मित्र की स्मृति-रेखा मंजुल, जो चार महीने के बाद मर रही है ।

छाया : लेकिन तुमने मेरे संसार में आग लगा दी ! डाक्टर, तुमने कभी स्त्री के हृदय की थाह नहीं ली कि वह प्रेम करते समय समुद्र से भी अधिक गहरी और गंभीर हो जाती है और निराश होने पर आग की लपट से अधिक भयानक, जिसकी एक-एक चिन-गारी से सारा जीवन जल-जलकर बुझता है जिससे उसे बार-बार जलना पड़े । जैसे हृदय के पास निकला हुआ फोड़ा हो जो हृदय की धड़कन से दर्द करे । फिर भी मैं मौन रही, हँसती रही, लेकिन तुमने यह न समझा कि छाया इसीलिए बढ़ रही है, क्योंकि उसके जीवन का सूर्य ढल रहा है । मेरे जीवन के वे दिन मेरे मौन रहने में अँधेरे के समान भयानक

हो रहे थे। डाक्टर ! मैं अधिक दिनों तक ज़िन्दा नहीं रह सकी।

शेखर : उन पुरानी बातों को भूल जाओ, छाया !

छाया : अब तो कुछ भी शेष नहीं है। वे बातें स्वप्न-जैसी मालूम होती हैं। लेकिन जिस तरह भयानक स्वप्न देख लेने के बाद उदासी रह जाती है, उसी तरह अब भी मेरे मन में रेखा खिची है। जिस तरह नदी के किनारे की मिट्टी फूलकर टेढ़ी-मेढ़ी हो जाय, टूट-फूट जाय—ऐसी मेरी भावना रह गई। चढ़ी हुई लहरों के चले जाने के बाद मिट्टी पर जो चिह्न बने रह जाते हैं, उसी तरह मेरे पास आज भी तुम्हारी स्मृति-रेखा है, डाक्टर !

शेखर : मैंने तुमसे विवाह नहीं किया, छाया ! केवल एक पवित्र उद्देश्य के लिए ! अपने जीवन की समस्त सेवाओं को एक पवित्र स्मृति में उत्सर्ग करने के लिए।

छाया : इन्द्रधनुष बनने के पहले ही तूफान आ गया ! लेकिन तुम कमज़ोर थे, डाक्टर ! तुम अपनी मित्र-पत्नी की सेवा भी करते और किसी पीड़ित हृदय से प्रेम भी। मनुष्य क्या नहीं कर सकता ! वह सूर्य की तरह उष्णता भी पहुँचा सकता है और प्रकाश भी। लेकिन तुम एक चिनगारी की तरह उष्णता देकर काले कण की तरह ज़मीन पर गिर पड़े, तुम प्रकाश नहीं दे सके, डाक्टर ! मेरे पास तुम्हारे पूर्व-जन्म का चित्र है जिसमें तुमने मुझसे विवाह किया था। उसी नाते मैंने तुमसे प्रेम किया, किन्तु—

शेखर : मैं अपराधी हूँ, छाया ! मुझे क्षमा करो !

छाया : अब क्षमा चाहते हो, और पहले ? पहले सेवा-व्रत में क्या आत्मा-प्रशंसा के भूखे नहीं थे ? चोर की तरह क्या मेरी ओर से भाग नहीं गये ? यदि मुझसे विवाह नहीं कर सकते थे तो

एक वीर की तरह दिये हुए वचन के लिए पश्चात्ताप करते। लेकिन तुमने मेरी ओर देखा तक नहीं। जैसे मैं तुम्हें मृगजल की तरह धोखा देती!

शेखर : नहीं, छाया! डर रहा था कि कहीं तुम्हारी ओर देखकर मैं अपने सेवा-व्रत से डिग न जाऊँ। मैं अपने मित्र की पत्नी की ओर से उदासीन न हो जाऊँ!

छाया : तो तुम कायर भी थे। क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे भीतर आशंकाएँ भी थीं, डर भी था। साहस नहीं था कि तुम मेरी ओर देखकर स्पष्ट बात कहते! शीशे को तोड़कर उसके चूर हुए टुकड़ों को ही उठा लिया होता। समझ लेती कि भूल से शीशा टूट गया और उस टूटे हुए शीशे से तुम्हें कुछ अनुराग भी है। लेकिन तुमने मुझे ऊँचे शिखर से गिराकर यह भी नहीं देखा कि मैं कितने नीचे गिर रही हूँ—किस पत्थर की ओर चूर-चूर होने के लिए बढ़ रही हूँ! स्त्री के हृदय में आग लगाकर त्याग का निर्मल जल पीते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई? तुम्हें कुछ ध्यान न था कि उस जल में मेरे कितने आँसू मिले हुए हैं।

शेखर : मैं नहीं जानता था, देवी! कि तुम्हारा प्रेम इतनी सीमा तक पहुँच चुका है।

छाया : स्त्री के सच्चे प्रेम की सीमा नहीं जानते और मृत्यु का रहस्य खोजने में व्यस्त हो? कभी मेरे रहस्य की ओर दृष्टि करते! लेकिन मकड़ी की तरह गोल जाले को बुनकर उसके बीच में बैठकर पृथ्वी की गोलाई नहीं देखी जा सकती। जुगनू के जीवन को चिनगारी से ज्वालामुखी की आग की कल्पना नहीं हो सकती, डाक्टर! तुम नहीं समझ सके कि स्त्री की निराशा के अंधकार में ही एक ज्वालामुखी होता है, उसके जागने पर

स्त्री को आग के सिवाय कुछ नहीं दीखता ।

शेखर : मैं समझता था देवि ! कि तुम्हें मेरे सेवा-व्रत से संतोष होगा । आजन्म अविवाहित शेखर के प्रति तुम करुणा और सुख प्रकट करोगी । लेकिन मेरे आत्म-बलिदान का कोई मूल्य नहीं रहा ! मैंने अपना सारा सुख, सारा आनन्द एक देवी के पावन चरणों में रख दिया और उसका कुछ अर्थ नहीं निकल सका ! मित्र की पत्नी में माँ की छाया देखी और मंजुल में पुत्री की—क्या इस विषमता में मेरा जीवन व्यर्थ समझा जाय ? मंजुल को ज्ञात नहीं कि इसके पिता में और मुझमें क्या अन्तर है, लेकिन मंजुल का सुख मेरे जीवन का सबसे बड़ा आदर्श है । उसके लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ । और मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि अपने मित्र की पुत्री मंजुल के सुख के लिए ईश्वर की पूजा भी ठुकरानी पड़े तो देवि ! मैं उसके लिए तैयार हूँ । यह मेरा व्रत है, मेरी तपस्या है, मेरा सब कुछ है ।

छाया : यह सब तो तुमने किया, लेकिन मेरे निरपराध जीवन को यों ही जलता हुआ छोड़ दिया ! जलते-जलते मेरे आँसू की धारा आग की नदी बन गयी, लेकिन धर्मात्मा डाक्टर ! अब मैं तुमसे कुछ न कहूँगी । एक बात कहकर जाना चाहती हूँ कि अब तुम मुझे बुलाने का कष्ट न किया करो । मुझे अपने ही संसार में रहने दो । बार-बार तुम्हारी पृथ्वी का स्पर्श मेरी शांति के स्वर्ग को नरक बना देता है ।

शेखर : मैं इसके लिए तैयार हूँ । लेकिन देवि ! मंजुल का जीवन कम न होने पाए । चार महीने बाद भी वह जीवित रहे और उसके मस्तिष्क से यह बात निकल जाय कि तुमने कुछ समय पहले उसे चार महीने बाद हृषिकेश ले जाने की बात कही थी । जैसे कुछ हुआ ही न हो । पुनर्जन्म में जिस प्रकार मनुष्य पिछले

जन्म की बातें भूल जाता है, उसी भाँति मंजुल भी तुम्हारी बात भूल जाय।

छाया : डाक्टर ! मैं यह नहीं कर सकती।

शेखर : देवि ! तुम सब कुछ कर सकती हो। मैं प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारी इच्छा की तरंग वायु बनकर मंजुल की साँस से उसके मस्तिष्क में पहुँचे और उसके मृत्यु के विचार को लेकर दूसरे क्षण बाहर आ जाय।

छाया : डाक्टर ! मैं यह नहीं कर सकती।

शेखर : मैं भिक्षा माँगता हूँ, देवि ! देवि ! मैं भिक्षा माँगता हूँ। : आगे बढ़ते हैं। :

छाया : डाक्टर ! वहीं रहो। अपनी सीमा से बाहर मत बढ़ो। मैं तुम्हारे संसार की स्त्री नहीं हूँ। मुझे तुम छू नहीं सकते। छूने का परिणाम बहुत भयंकर होगा।

शेखर : रुककर : अच्छा, आगे नहीं बढ़ूँगा, लेकिन मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।

छाया : डाक्टर ! कुछ वर्ष पहले की बात सोचो। मैंने तुमसे प्रार्थना की थी और तुमने तिरस्कार किया था। आज तुम प्रार्थना कर रहे हो। बोलो, मैं तुम्हारा तिरस्कार करूँ ? संयम की जंजीर से जकड़े हुए संन्यासी ! दूसरे का हृदय जलाना भी पाप की परिभाषा में आ सकता है। उस पाप का परिणाम देखने की शक्ति क्या तुममें नहीं है ?

शेखर : बहुत बड़ी परीक्षा न लो, देवि ! मंजुल की मृत्यु देखने की शक्ति मुझमें नहीं है।

छाया : जैसे मेरी मृत्यु देखने की शक्ति तुम में थी, वैसे ही मंजुल की मृत्यु देखने की शक्ति का आवाहन करो।

शेखर : छाया ! यदि यही बात रही तो मैं सचमुच ऐसी स्वर्गीय आत्माओं का आवाहन करूँगा कि तुमको नष्ट हो जाना होगा।

मेरे आराध्य ! शक्ति दो कि मैं छाया को नष्ट कर सकूँ ! तुम्हें नष्ट होना होगा, छाया !

छाया : क्या डॉक्टर ? फिर कहना। इस वाक्य को फिर मुँह पर न लाना। आत्माएँ नष्ट नहीं होतीं, न वे उत्पन्न होती हैं। मैं नष्ट नहीं हो सकती। मुझसे युद्ध करने में तुम्हारी हार होगी—यह मैं जानती हूँ। तुम्हारे ये सारे यंत्र नष्ट हो जायेंगे, तुम नष्ट हो जाओगे और देखो, और देखो, तुम अपनी सीमा से बहुत बढ़े जा रहे हो। मृत्यु के रहस्य को कोई नहीं जान सकता, लेकिन तुम अपने परिश्रम से बहुत कुछ जान गये। यह रहस्य संसार के मनुष्यों के लिए नहीं है। ईश्वर ने मृत्यु को जीवन के बाद इसलिए बनाया है कि संसार का जीवन जीवन रहे।

शेखर : लेकिन मैं रुक नहीं सकता, देवि !

छाया : रुकना होगा, तुम्हारी खोज का परिणाम है कि मंजुल अपनी मृत्यु की बात जान सकी।

शेखर : ओह, मंजुल की मृत्यु ! बचाओ देवि ! मुझे !

छाया : तुम मंजुल के लिए सब कुछ कर सकते हो ?

शेखर : सब कुछ। अपने जीवन के बंधन भी तोड़ सकता हूँ।

छाया . तो पहले अपना यह यंत्र तोड़ो ! : **तीव्र दृष्टि** :

शेखर : **चौंककर** : ऐं—यह यंत्र तोड़ूँ ? अपने जीवन की सारी साधना, सारी तपस्या ? न, न देवि ! यह मुझसे न होगा।

छाया : तो मंजुल की मृत्यु निश्चित है। मैं यह नहीं चाहती कि तुम आत्माओं के संसार में भी तूफ़ान उठाओ—मृत्यु के परदे को फाड़कर तुम आगे क़दम बढ़ाओ। तुम वहीं रहो, जहाँ तक तुम्हें रहने का अधिकार है। और तुम्हें अपनी सारी साधनाएँ भूलनी होंगी। बोलो, मंजुल के जीवन और अपने यंत्र में तुम्हें कौन अधिक प्रिय है ?

शेखर : यदि यही प्रश्न है तो मंजुल का जीवन, देवि !

छाया : तो अपना यंत्र नष्ट करो ।

शेखर : ओह, यंत्र नष्ट करूँ ? अच्छा, मंजुल के जीवन के लिए करूँगा, निश्चय करूँगा । अपना यन्त्र तोड़ूँगा । : यंत्र तोड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं । रुक जाते हैं : नहीं देवि ! मुझे यह दंड न दो । देवि ! मुझे यह दंड न दो । मेरी जीवन की सारी साधना !

छाया : वीर पुरुष की तरह दंड स्वीकार करो, डॉक्टर ! यंत्र तोड़ दो ।

शेखर : तोड़ दूँ....अच्छा तोड़ता हूँ । : रुक जाते हैं :

छाया : शक्तिशाली डॉक्टर ! मंजुल के लम्बे जीवन के लिए यंत्र तोड़ दो ।

शेखर : चिल्लाकर : मंजुल के लम्बे जीवन के लिए । : यंत्र पर प्रहार करते हैं । यंत्र टूट जाता है और छायादेवी भी नहीं दीख पड़तीं । :

शेखर : पुकार कर : छाया, छाया ! : कोई उत्तर नहीं आता । शेखर स्विच आन करते हैं । उजेला हो जाता है । मंजुल जागती है । :

मंजुल : आँखें मलते हुए : पिताजी !

शेखर : मंजुल !

मंजुल : उठकर : पिताजी ! नींद आ गई । मैं सो गई । : शेखर कुछ नहीं बोलते :

मंजुल : पिताजी ! बोलते क्यों नहीं ? नाराज़ हो गए !

शेखर : गम्भीरता मे भारी स्वर में : नहीं, मंजुल !

मंजुल : अच्छा, अगर मेरे सोने से नाराज़ होते हैं, तो रात में भी नहीं सोऊँगी । लेकिन आपको अच्छी बातें सुनानी होंगी ।

शेखर : और अगर हृषीकेश चली गई तो ?

मंजुल : मैं अपने पिताजी को छोड़कर हृषीकेश क्यों जाने लगी ? मैं तो हमेशा यहीं रहूँगी । आपके पास ।

शेखर : तुझसे किसी ने अपने साथ हृषिकेश ले जाने की बात कही थी ?

मंजुल : मुझसे ? : सोचती है : मुझसे कौन कहेगा ? यदि आप अपने पास से हटाना चाहते हों तो बात दूसरी है।

शेखर : ओह ! मेरी मंजुल....: मंजुल को हृदय से लगाता है :

मंजुल : टूटे हुए 'एपराटस' को देखकर : ओह, यह किसने तोड़ा पिताजी ! : एपराटस के पास शीघ्रता से जाती है :

शेखर : गम्भीरता से : मैंने ।

मंजुल : आपने ! अरे आप तो इसके एक कार्क के इधर से उधर होने में चिन्तित थे । आपने कैसे तोड़ा ?

शेखर : मैंने तोड़ दिया, मंजुल मैंने, अब चन्द्रलोक की खोज करूँगा । यहाँ की नहीं । अब मैं और मंजुल, मेरी बेटी ।

मंजुल : पिताजी........!

शेखर : मंजुल ! दोनों एक-दूसरे की ओर बढ़ते हैं :

पर्दा गिरता है ।

चन्द्रलोक

•

अंक—२

पात्र

•

डा० शेखर : एक महान् वैज्ञानिक, जिसने गुप्त रूप से अनुसंधान करते हुए चन्द्रलोक तक पहुँचने का सफल प्रयोग किया है।

कुमारी मंजुल : डॉ० शेखर की पुत्री।

डा० दिलीप : चिकित्सा-शास्त्र में निपुण डॉक्टर।

चन्द्रपुरुष : चन्द्रलोक का निवासी मानव।

चन्द्रनारी : चन्द्रलोक की मानवी।

चन्द्रलोक

सन् १९५९ ई० । चन्द्रलोक में सूर्योदय का प्रथम अंश । चन्द्रलोक के भू-गर्भ का एक कक्ष । ऊपर लगे हुए एक यंत्र से नीले प्रकाश की एक छोटी-सी झील बन गई है जिसमें प्रकाश जल की भाँति प्रवाहित हो रहा है । कक्ष में वह एक नीले बादल की भाँति झूल रहा है जिससे चारों ओर स्वच्छ और निर्मल ज्योति फैल रही है । कक्ष के कोने में स्थित दूसरे यंत्र से जमी हुई पतली हवा तरल होकर प्रवाहित हो रही है । ईस्पात और प्लेटिनम से मिली हुई धातु से बैठने के अनेक तारिकाकृत स्थान बने हुए हैं । यद्यपि यह कक्ष चन्द्र के धरातल से तीन हज़ार फीट से अधिक गहराई में है, परन्तु सामने ही पतले रजत-पट पर विद्युत् तरंगों से आकाश का चित्र खिंचा हुआ है, जिसमें नक्षत्रों की चमक सहस्रगुनी होकर जगमगा रही है । दूसरे रजत-पट पर समस्त चन्द्रलोक का दृश्य है जिसमें स्पंज के आकार के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और बड़ी-बड़ी गहरी खाइयाँ हैं । वहाँ जमी हुई सूक्ष्म वायु की लहरें स्थिर होकर रह गई हैं । गणित और ज्यामिति के सहारे सारा कक्ष ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में सँवारा गया है कि कक्ष के मध्य में रखे हुए यंत्र का

कोई एक बटन दबाते ही कक्ष का सम्बन्ध चंद्र के ऊपरी धरातल से हो जाता है और इच्छित नक्षत्र की किरण कक्ष में प्रवेश कर जाती है । वातावरण में एक-सी लगातार हलकी ध्वनि हो रही है, जैसे आकाशवाणी का प्रसारण समाप्त होने पर खुले हुए रेडियो-सेट से शून्य वायु की ध्वनि निकलती रहती है । बीच-बीच में दूर से किसी गैस के विस्फोट की ध्वनि निकलती है अथवा किसी भटके हुए उल्का का घर्घर नाद सुनाई पड़ता है जो धीरे-धीरे मन्द होकर शून्य में विलीन हो जाता है ।

तारिका-कृत मंच पर बैठे हुए डा० शेखर अपने हाथ, में एक यंत्र लेकर देख रहे हैं । मंजुल आकाश के चित्रपट को देख रही है। प्रसन्नतापूर्ण शब्दों में मंजुल के कंठ से उल्लास की वाणी निकल रही है ।

मंजुल : एक पूरी हँसी हँस लेने के बाद : चन्द्रलोक ! इस चन्द्रलोक को छोड़कर अब कहीं जाने को जी नहीं चाहता, पिता जी ! देखिए, इस चित्रपट को, विद्युत् तरंगों से सारा आकाश प्रतिबिम्बित हो रहा है । आकाश में नक्षत्र-मंडल ऐसे जगमगा रहे हैं, जैसे अपने पृथ्वी के गुलाब के फूल पर ओस के बिन्दु चमकते रहते हैं और इस दूसरे चित्रपट पर चन्द्रलोक कैसा दीख रहा है ! ओह, बिलकुल स्पंज के आकार का । बड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ और गहरी खाइयाँ । ऐसा ज्ञात होता है, जैसे किसी बुढ़िया का झुर्रीदार चेहरा हो ! : हँसकर : झुर्रीदार चेहरा ! देखिए न ।

शेखर : ध्यानमग्न मुद्रा में : हाँ !

मंजुल : और पिताजी ! डॉ० दिलीप कहते थे कि गणित और ज्यामिति के सहारे सारा कक्ष ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में सँवारा गया है कि

कक्ष के मध्य में इस यंत्र की कोई भी बटन दबा दीजिए, मन-चाहे नक्षत्र की किरण इस कक्ष में आ जाती है। सूर्योदय के समय मैंने पृथ्वी की किरण की बटन दबाई थी। सारी पृथ्वी चित्रपट पर खिंच गई, बिलकुल नारंगी जैसी। उसमें मैंने अपना प्यारा भारतवर्ष देखा था। यहीं से मैंने अपना भारत देखा था!

शेखर : पूर्ववत् गम्भीरता से : हूँ।

मंजुल : अब यहीं देखिए, पिताजी! कमरे की छत से प्रकाश पानी की तरह बह रहा है, जैसे कोई सरोवर है। बिलकुल निर्मल नीला प्रकाश! बहुत विचित्र बातें हैं। हवा को ही लीजिए। अपनी पृथ्वी पर तो हम हवा में साँस लेते थे। यहाँ जमी हुई हवा खाते हैं, जैसे आइसक्रीम हो! **: हँसती है :** हवा की आइस-क्रीम। **: फिर हँसती है :** और अगर चलने के लिए पैर उठाएँ तो उछल जाते हैं बीस गज, बिलकुल मेढक की तरह। **: कुछ गम्भीरता से :** पिता जी! अगर आपकी तरह मैं भी अनुसंधान करूँ तो कहूँगी कि मेढक चन्द्रलोक का ही जीव होगा। उछलते-उछलते चन्द्रलोक के किनारे पहुँचा होगा और फिर जो उछला होगा, तो ठीक हमारी पृथ्वी के बीचो-बीच 'धम्म' से गिरा होगा। तब से बेचारा उछल ही रहा है। कहीं चन्द्रलोक मिलता ही नहीं उसे।

शेखर : गम्भीरता से : हाँ....!

मंजुल : अरे, आप तो कुछ बोल भी नहीं रहे हैं, पिताजी! कौन-सा यंत्र देख रहे हैं?

शेखर : अपने राकेट-यान का ही यंत्र है जिसकी हमें लौटते समय आवश्यकता होगी।

मंजुल : क्षमा कीजिए, पिताजी! मैंने आपके गम्भीर चिन्तन में बाधा

डाली। मैं बहुत दुष्ट हूँ।

शेखर : नहीं, मंजुल ! अपनी पृथ्वी पर पुनः लौटने की योजना बना रहा हूँ। कहीं असफल न हो जाऊँ, इसलिए यह नवीन यंत्र बना रहा हूँ। इसके लिए बहुत सावधानी चाहिए।

मंजुल : यह तो ठीक है, किन्तु पिताजी ! अभी हमें यहाँ आए दिन ही कितने हुए हैं ! जितने वर्षों आपने इस यात्रा की साधना की, उतने दिन भी तो आप नहीं रुक रहे हैं।

शेखर : हमने अपनी यह यात्रा गुप्त रूप से की है। अपने राष्ट्र को भी इसकी सूचना नहीं दी। डर था, यदि असफल हो जाता तो सारा संसार हमारे राष्ट्र की हँसी उड़ाता !

मंजुल : आपके प्रयोग कभी असफल नहीं हुए।

शेखर : किन्तु यह प्रयोग पिछले सभी प्रयोगों से महान् था। किस कठिनाई से हम लोग यहाँ आ सके हैं।

मंजुल : आपके वर्षों की साधना जो थी, पिताजी !

शेखर : दो लाख अड़तालीस हज़ार मील की यात्रा ! अपनी पृथ्वी से यह चन्द्रलोक ! इस अंतरिक्ष के अनन्त सागर में एक छोटी-सी लहर की तरह हम बढ़े। ऐसी लहर, जो कहीं भी भटक सकती थी—कहीं भी टकरा सकती थी। छत्तीस हज़ार मील प्रति घंटे की गति से हम चले। इस नक्षत्रलोक के संगीत में एक छोटे से स्वर की भाँति 'सम' पर आकर ही रुके !

मंजुल : पिताजी ! आपके विज्ञान के इस महायज्ञ का पुण्य लूटने के लिए मैं भी साथ चली आई और डॉ० दिलीप भी। मैं जानती थी कि आपके प्रयोग कभी असफल नहीं होंगे। मृत्यु का रहस्य खोलकर आपने मृतकों तक को जीवित रूप में दिखला दिया। और अन्त में, मेरे पीछे आपने अपना यंत्र तक तोड़ डाला।

शेखर : किंतु इस प्रयोग में शायद हम स्वयं टूट जाते। हमारा यान जिस दिशा में चल रहा था, यदि उसी दिशा में आकाश के अन्तराल को भेदता हुआ कोई धूमकेतु हमसे टकरा जाता, तो इस महाकाश में एक चिनगारी ही दीख पड़ती और उसके साथ हम भी बुझ जाते। सदैव के लिए। अंतरिक्ष में बिछी हुई 'कास्मिक' किरणें जिस वेग से आकाश का कण-कण भेदती हैं, उससे कौन जीवित रह सकता है?

मंजुल : किन्तु धातुओं के विचित्र संयोगों से बने हुए आपके कवच हमारे यान और शरीर को सभी संकटों से बचाकर यहाँ ले आए।

शेखर : यह सब प्रभु की कृपा है!

मंजुल : और विज्ञान पर आपका अधिकार भी तो है। यह कितनी बड़ी सफलता है कि जो चन्द्र पहले केवल कवियों की कल्पना का केन्द्र था, वही आज जीवन का सत्य है। यहाँ भी प्राणी हैं और वे हमारे जैसे ही हैं।

शेखर : हमसे अधिक सभ्य और सुसंस्कृत।

मंजुल : हाँ, जब हम सब अपने यान से उतरकर सूर्यास्त से पूर्व ही चन्द्रलोक के धरातल पर भटक रहे थे, तब यहाँ के निवासियों ने कितने कुतूहल और कितने प्रेम से हमारा स्वागत किया!

शेखर : वे भी जानना चाहते थे कि हम किस लोक से आए हैं और तब दो नक्षत्र आपस में मिले, दो संसार परस्पर जुड़े, एक ही प्रेम के सूत्र में। कितनी शीघ्रता से वे हमें चन्द्र के ऊपरी धरातल से अपने निवास-स्थान इस भूगर्भ में ले आये।

मंजुल : नीचे उतरने का वह छोटा-सा यान कितना सुन्दर था!

शेखर : और कितने शीघ्र हम इस भूगर्भ में पहुँच गए! धरातल से तीन हज़ार नौ सौ फीट नीचे।

मंजुल : **आश्चर्य से** : तीन हज़ार नौ सौ फ़ीट ?

शेखर : हाँ, चन्द्रलोक के निवासियों की वैज्ञानिक गति आश्चर्यजनक है। उन्होंने चन्द्र के भीतर निवास करने की कला सीखी है। धरातल से हज़ारों फ़ीट नीचे। चन्द्र के धरातल पर कोई नहीं रह सकता। न वहाँ हवा है, न पानी। ज्वालामुखी पर्वतों के विस्फोटों और सूर्य की असह्य धूप ने इस छोटे-से चन्द्र का सब कुछ छीन लिया! जैसे यह प्रकृति का दंड हो। असह्य गर्मी और असह्य शीत। दिन में धरातल का तापमान जानती हो, कितना होता है? पानी के उबलने के बिन्दु से ६० डिग्री अधिक और शीतमान होता है बर्फ के जमने के बिन्दु से २१० डिग्री नीचे।

मंजुल : ओफ़! इतनी गरमी और इतनी ठंड! जैसे दोनों में होड़ लगी हो। पर पिताजी! आप तो बड़े वैज्ञानिक हैं। कभी मृत्यु का रहस्य खोजते हैं, कभी चन्द्रलोक तक चले जाते हैं। इस तीखी गरमी और करारी ठंड को भी ठीक कर दीजिए न ?

शेखर : इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि भूगर्भ में निवास किया जाय। चाँद की मिट्टी सड़कर खोखली हो गयी है, इसलिए चन्द्र के निवासियों ने भी यहीं रहना ठीक समझा। उन्होंने विज्ञान में जैसी उन्नति की है, वैसी हम लोग भी नहीं कर पाए।

मंजुल : यह अपने कैसे जाना, पिताजी ?

शेखर : उनके यंत्रों से। अब यही यंत्र लो : **पास से एक यंत्र उठाते हैं** : जो यहाँ के लोग हमें कल दे गये हैं। देखो इसे! इस यंत्र से विश्व की कोई भी भाषा समझी जा सकती है। जब चन्द्र का कोई निवासी बोलता है, तो यह यंत्र बीच में रख दिया जाता है। उस ओर से उसकी भाषा प्रवेश करती है, इस ओर

से वह हिन्दी बनकर निकलती है। इस ओर से हिन्दी प्रवेश कर उस ओर चन्द्रीय भाषा बनकर निकलती है। ध्वनि-संचार के लिए उन्होंने विचित्र प्रकार के ईथर का निर्माण किया है जो इस भूगर्भ में ही संभव है। धरातल पर नहीं। इसी ईथर और ऑक्सिजन से इस चन्द्र के भूगर्भ में हवा बनती है। देखो वह यंत्र। : **संकेत करते हैं** : बिना शब्द किए चल रहा है। इसी हवा में हम और चन्द्र के निवासी साँस ले रहे हैं।

मंजुल : सचमुच ! बड़े आश्चर्य की बात है ! और यह भी तो देखिए ! : **ऊपर छत की ओर संकेत करती है** : प्रकाश की झील, जिससे प्रकाश पानी की तरह बहता है। पिताजी ! ये चन्द्र के निवासी मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।

शेखर : लाखों वर्षों का इसका इतिहास है। ये हमसे अधिक सभ्य हैं। चन्द्रमा हमारे पृथ्वी का ही भाग था जो उससे टूटकर अलग हो गया। यह चन्द्र हमारी पृथ्वी से छोटा था, इसलिए पहले यह ठंडा हुआ और वह अनेक सभ्यताओं से गुजरा। उन सभ्यताओं से गुज़रने के बाद वह प्रकृति और मानवता के सब रहस्य जान गया। इसने ईर्ष्या, घृणा और युद्ध का अन्तिम रूप देख लिया। अब तो वह प्रेम और विश्व-बन्धुत्व का उपासक है। उसका विज्ञान शान्ति और सुख के लिए न जाने कितने आविष्कार कर चुका। मैं समझता हूँ कि एटम बम से अधिक इनके प्रेम में शक्ति है !

मंजुल : पिताजी ! इन लोगों के सम्बन्ध में एक बात पूछना चाहती हूँ। इन चन्द्रवासियों के पैर छोटे और सिर बड़े क्यों होते हैं ?

शेखर : प्रकृति ने ही उन्हें यह रूप दिया है। तुम जानती हो कि यहाँ चन्द्रलोक में गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है। वह हमारी पृथ्वी के

गुरुत्वाकर्षण के छठे भाग से अधिक नहीं है। इसलिए चलने में उन्हें न तो मेहनत करनी पड़ती है और न अधिक चलने की आवश्यकता ही होती है। यहाँ एक डग में बीस गज तक उड़ा जा सकता है।

मंजुल : यह तो मैं स्वयं कह रही थी।

शेखर : तो पैर से परिश्रम न लेने में इनके पैर छोटे रह गये हैं। सिर इसलिए बड़ा है कि ये लोग बड़े बुद्धिमान और मेधावी हैं। इन्होंने सैकड़ों आविष्कार कर डाले हैं। मस्तिष्क से अधिक काम लेने के कारण सिर बड़ा हो गया है। लेकिन देखने में सुन्दर और स्वस्थ हैं।

मंजुल : अगर हम लोग कुछ दिन यहाँ रह गए तो इन्हीं की तरह हो जायेंगे। सिर बड़ा और पैर छोटे! छोटे पैर होने से मैं साड़ी कैसे पहिनूँगी?

शेखर : तुम भी इन्हीं की भाँति सफेद लचीली धातुओं के कपड़े लपेट लेना!

मंजुल : तो फिर खिलौने की गुड़िया और मुझमें अन्तर क्या रह जायगा? बिलकुल गुड़िया-जैसी दिखूँगी!

शेखर : तू तो मेरे लिए सदैव एक छोटी-सी गुड़िया है।

मंजुल : अच्छा, पिताजी! एक बात और ध्यान में उलझ गई। यहाँ भूगर्भ में रहनेवाले मानवों में जो हमें सतह पर मिले थे, इतना अन्तर क्यों है?

शेखर : मैंने कहा न, प्रकृति के प्रभावों से ही शरीर में भेद हो जाता है। जैसे अफ़्रीका में रहनेवाले हब्शियों का शरीर हमारे शरीर से रूप-रंग में कितना भिन्न होता है! इसी तरह चन्द्रलोक के ऊपरी सतह पर रहनेवालों का चमड़ा अधिक कठोर और मोटा

हो जाता है जिससे वे गर्मी और शीत की अधिकता सहन कर सकें, जैसे कछुवे का चमड़ा होता है न, वैसा ही ।

मंजुल : अच्छा, यहाँ मानवों के अतिरिक्त और कोई जीवधारी नहीं रहते ?

शेखर : नहीं ।

मंजुल : क्यों ? हमारे यहाँ तो लाखों प्रकार के जानवर हैं, हाथी से लेकर मच्छर तक ! आदमी से लेकर ऊदबिलाव तक ।

शेखर : चन्द्र के धरातल पर पानी और हवा तो है। जंगल नहीं हैं । जले हुए पहाड़ और ज्वालामुखी से बने हुए गड्ढे हैं । मछली, मेढक, बन्दर, भालू कहाँ रहेंगे ? यह तो मानव की बुद्धि है कि वह गर्मी और शीत से अपने को बचाकर भूगर्भ में चला आया । बड़े-बड़े नगरों का निर्माण किया और अपनी शक्ति से उसने जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुओं का आविष्कार कर लिया । जीवन के लिए उसने पृथ्वी-तल निकाल लिया और पानी के लिए ईथर को तरल कर लिया । भोजन-पानी के बिना साधारण जीव कहाँ से होंगे ?

मंजुल : तो प्राकृतिक भोजन होने के कारण यहाँ कोई बीमार तो पड़ता ही न होगा ?

शेखर : बिलकुल नहीं । कल एक चन्द्र-निवासी से बातें हुई थीं । वह कहता था कि यहाँ कोई बीमार नहीं पड़ता ।

मंजुल : इसी यंत्र से आपने बातें की होंगी ?

शेखर : हाँ, और कोई दूसरा साधन ही क्या था ? वही तो यह यंत्र लाया था । मैंने उससे यहाँ के जीवन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें पूछ डालीं । तुम तो दूसरे कक्ष में बड़े तारों के प्रतिबिम्ब देख रही थीं ।

मंजुल : मैं होती तो मैं भी बहुत-सी बातें पूछती !

शेखर : फिर कभी पूछ लेना । हाँ, तो वह कह रहा था कि यहाँ कोई बीमार ही नहीं पड़ता । आकाश के तारों की भाँति सभी स्वास्थ्य से चमकते रहते हैं ।

मंजुल : तारों की भाँति चमकते रहते हैं, पर कभी-कभी तारे टूटते भी तो हैं।

शेखर : हाँ, टूटते हैं ! जब कहीं कोई विस्फोट होता है, तो उसकी अग्नि में जलकर या किसी भूमि की दरार में दबकर ये लोग मर जाते होंगे । लेकिन कभी बीमार नहीं पड़ते । सदा तन्दुरुस्त रहते हैं : रुककर : डॉ० दिलीप कहाँ हैं ?

मंजुल : वे एक चन्द्रवासी के साथ किसी गुफा में चले गये हैं । वे यहाँ भी अपनी दवाएँ खोज रहे हैं । भला, यहाँ उन्हें कौन-सी दवाएँ मिलेंगी ?

शेखर : वे यहाँ की भूमि की परीक्षा कर देखना चाहते हैं कि चन्द्र-निवासियों की तन्दुरुस्ती का क्या रहस्य है । मेरी धारणा कुछ और है । यहाँ के निवासी इसलिए तन्दुरुस्त हैं कि उन्हें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है । यदि मनुष्य चिन्ता के शिकंजे से छूट जाय तो....

: सहसा एक यंत्र से विचित्र सीटी की आवाज़ आती है । :

मंजुल : चौंककर : यह कैसा शब्द है, पिताजी !

शेखर : उठकर : ठहरो, मैं समझने की चेष्टा करता हूँ । : एक क्षण सीटी की आवाज़ ध्यान से सुनते हैं । सीटी के बन्द होने पर : यह सोवियत संघ का सन्देश है । सुई जिस अक्षांश पर है, वहाँ साइबेरिया का अणु-केन्द्र है ।

मंजुल : सोवियत संघ का क्या सन्देश है ?

शेखर : देखो, मैं अणु-भाष-यंत्र सामने रखता हूँ। जो भी भाषा होगी, उसका रूपान्तर हिन्दी में हो जायगा।

: यंत्र रखने की आवाज़ होती है। सीटी फिर एक बार बजती है और थोड़ी देर बाद रुक जाती है। फिर एक भारी स्वर में सन्देश सुनाई पड़ता है :

हलो....हलो....चन्द्रलोक....चन्द्रलोक....हमारा ल्यूनिक ठीक स्थान पर पहुँचा....हलो....अब हम आदमी भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं....ल्यूनिक में हमारा राज्यचिह्न है....हलो.... राज्यचिह्न....हँसिया और हथौड़ा....ल्यूनिक में एक ट्रांसमिटर भी है। वेव लेंग्थ है ००१०४, उसी से चन्द्रलोक से सन्देश भेजिए। हलो....चन्द्र-निवासी सन्देश भेजिए। हलो....चन्द्र-निवासी सन्देश की तरंग भेजिए। तरंग भेजिए ! हलो.... हलो....तरंग भेजिए।

: लगातार किसी तार-जैसा कम्पन होता रहता है। :

मंजुल : यह सोवियत संघ कौन-सा संदेश भेजने को कहता है ? आप कोई संदेश भेजेंगे ?

शेखर : संदेश भेजूं ? लेकिन कैसे भेज सकता हूँ ? अनेक कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि चन्द्र के धरातल पर सूर्य डूबने और शीत बढ़ने से पहले किसी चन्द्रवासी को भेजा जाय जो सोवियत संघ द्वारा भेजे गए ल्यूनिक की खोज करे और उसमें से ट्रांसमिटर निकाले और दूसरी कठिनाई अपने आपको प्रकट करने की है।

मंजुल : पिताजी ! भावुक तो आप स्वभाव से ही हैं। फिर अपनी इस भावुकता में अपने भारत को ही सन्देश भेज दीजिए।

शेखर : भेजने का प्रयत्न कर सकता हूँ, पर ट्रांसमिटर नहीं है। दुबारा जब आऊँगा, तब भेजना अच्छा होगा ।

मंजुल : और यदि इस बीच सोवियत संघ के लोग आ गए, तो यहाँ पहली बार आने का श्रेय उन्हीं को मिलेगा ।

शेखर : श्रेय कैसे मिलेगा ? हम लोग अपनी राष्ट्र-ध्वजा यहाँ छोड़ जायेंगे ।

मंजुल : तब तो रूसी वैज्ञानिक आश्चर्य में पड़ जायेंगे कि भारत ने विज्ञान में चुपचाप कितनी प्रगति कर ली !

शेखर : अभी तो हमें चलकर संसार को यह संदेश देना है कि चन्द्रलोक में हम सब अपनी शत्रुता भूलकर एकसाथ निवास कर सकते हैं। पृथ्वी और चन्द्रलोक सुख और शान्ति के दो किनारे हैं। यहाँ भी हम अपने निवास के लिए विस्तृत भूमि पा सकते हैं।

मंजुल : ठीक है, पिताजी ! हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी बहुत चिन्तित हैं। उनकी चिन्ताएँ कम हो जायँगी। भोजन और जनसंख्या का प्रश्न हमारे देश के सामने गंभीर रूप से है। : रुककर : पिताजी ! आपको भूख तो नहीं लगी है ।

शेखर : नहीं, बेटी ! यहाँ तो भूख-प्यास, आलस-नींद का अनुभव ही नहीं होता ।

: सहसा दूर से विस्फोट की ध्वनि सुनाई देती है। :

मंजुल : यह कैसा विस्फोट हुआ, पिताजी !

शेखर : इस भूगर्भ में चन्द्रवासियों के अनेक प्रयोग चला करते हैं। इन्हीं प्रयोगों से कोई विस्फोट हुआ होगा ?

मंजुल : इस विस्फोट से हमारा यह कक्ष भी हिल रहा है ।

शेखर : चिन्ता की बात नहीं। यह कक्ष ऐसी धातु से बना है जो हमारे

यहाँ के रबर की भाँति है। यह झुक तो सकता है, टूट नहीं सकता। कल मैंने इसकी परीक्षा की थी।

मंजुल : यहाँ की सभी बातें विचित्र हैं। जड़ और चेतन एक से हैं। धातुएँ टूट नहीं सकतीं, मनुष्य भूख-प्यास का अनुभव नहीं करते।

शेखर : भू-तत्वों को ग्रहण करने से भूख और प्यास की अनुभूति शरीर भूल ही गया है। जीवन बिना थके ऐसे चलता है, जैसे अपनी पृथ्वी पर गंगाजी का प्रवाह है जो बिना थके शताब्दियों से एक-सा बह रहा है। : रुककर : तुम्हें भी शायद भूख न लगी होगी।

मंजुल : मैं आश्चर्य कर रही हूँ, पिताजी ! दो दिनों से मैंने कुछ भी नहीं खाया और शक्ति पहले जैसी ही है। न भूख है, न प्यास !

: सहसा तार के कंपन-जैसी ध्वनि होती है। उसके साथ ही डॉ० दिलीप का प्रवेश :

दिलीप : आते ही उल्लास के स्वर में : बधाई है, डॉक्टर शेखर ! बधाई है ! भारत को बधाई दो !....भारत को बधाई दो !

शेखर : किस बात की बधाई ?

मंजुल : डॉ० दिलीप ! आप तो उड़ते हुए-से आ रहे हैं। ऐसी कौन-सी बात हो गयी जिससे आप बधाई की बात चिल्ला कर कह रहे हैं।

दिलीप : डॉ० शेखर ! कुमारी मंजुल ! हमने अमृत-रस प्राप्त कर लिया ! भारत ने अमृत-रस प्राप्त कर लिया ! मैंने तन्दुरुस्ती का रहस्य खोज लिया....खोज लिया ! हमेशा के लिए खोज लिया ! अमृत-रस....अमृत-रस !

शेखर : अमृत-रस ? किस प्रकार का अमृत-रस ?

दिलीप : मैं औषधियों की पहचान के लिए यहाँ की भूमि की परीक्षा कर रहा था। उसी समय यह हाथ आ गया। अमृत-रस !

मंजुल : कैसे ?

दिलीप : तुमने अभी किसी विस्फोट की आवाज़ सुनी थी ?

शेखर : हाँ, अभी-अभी सुनी थी ।

मंजुल : अरे, उससे तो हमारा धातु-निर्मित कमरा भी हिलने लगा था ।

दिलीप : मैंने ही विस्फोट किया था । एक चन्द्रवासी की सहायता से एक अणु-चक्र चलाया । भगवान् के सुदर्शन-चक्र की तरह । एक विशाल भूखंड उखड़ गया । उसके उखड़ते ही जमे हुए घी की भाँति एक चिकना सफेद पदार्थ भूमि की दरार से लटक गया, साथ ही एक हाथ का अंश भी दीख पड़ा ।

शेखर : हाथ का अंश ?

दिलीप : हाँ, हाथ का अंश ! पाँचों उँगलियाँ और कलाई । इस हाथ के साथ बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ, अनेक प्रकार के रत्न और बड़े विचित्र यंत्र निकल पड़े । वे शताब्दियों पूर्व यहाँ की सभ्यता के चिह्न ज्ञात होते थे और वह हाथ बिलकुल हमारे-आपके हाथ की भाँति है जो एक पूर्ण विकसित मानव के हाथ की सूचना देता है । प्लेटिनम के अनेक यंत्र हैं । वह चन्द्रवासी भी नहीं समझ सका कि ये यंत्र किस आविष्कार के हैं और यह हाथ किसका है ?

मंजुल : वह हाथ स्त्री का है या पुरुष का ?

दिलीप : यह मैं नहीं कह सकता ।

मंजुल : उस हाथ में अँगूठी थी ?

शेखर : तुम तो पृथ्वी के शृंगार की बात यहाँ भी सोचने लगीं, बेटी !

दिलीप : यंत्र और हाथ चाहे जिस सत्य की सूचना दें, पर मैं तो कहूँगा कि वह सफ़ेद पदार्थ अद्भुत रस ही है ।

शेखर : डा० दिलीप ! डाक्टर होकर तुम सहज ही कल्पना कैसे करने लगे ?

दिलीप : यह कल्पना नहीं है, डाक्टर ! यह वास्तविक सत्य है । जैसे ही यह सफ़ेद पदार्थ भूमि की दरार से लटका, वैसे ही मेरे साथ के चन्द्रवासी ने जिज्ञासा से उसे अपने हाथ में ले लिया और उसका स्वाद चखा ।

शेखर : स्वाद चखा ?

दिलीप : चन्द्रवासी निर्भीक तो होते ही हैं । उसने हाथ में लिया और एक क्षण में उसका गुण पहचानकर मुख में डाल लिया ।

मंजुल : फिर क्या हुआ ?

दिलीप : पदार्थ के मुख में जाते ही उस चन्द्रवासी के मुख से प्रकाश की किरणें निकलने लगीं और उसमें इतनी शक्ति आई कि वह एक ही छलाँग में दो बार उस गुफा के चारों ओर घूम गया !

मंजुल : तब तो सचमुच ही वह अमृत-रस है ! शायद इसी बात को समझकर हमारे प्राचीन ऋषियों ने चन्द्र को 'सुधाकर' या 'सुधाधर' कहा है । डॉ० दिलीप ! हम लोग पृथ्वी में शरद् पूर्णिमा के दिन खुले आकाश के नीचे दूध रख देते हैं । रात भर चन्द्रमा उस पर अमृत का रस डालता रहता है । सुबह हम लोग वही दूध पी लेते हैं । शायद शरद् पूर्णिमा के दिन चन्द्र के इसी भाग से किरणें निकलती होंगी ।

दिलीप : बिलकुल सम्भव है । डाक्टर शेखर ! आप किस चिन्तन में डूब गए ?

शेखर : वह चन्द्रवासी कहाँ है जिसके मुख से प्रकाश की किरणें निकलने लगी थीं ?

दिलीप : वह उस स्थान से उसी समय चला गया । बड़े-बड़े प्राचीन

यंत्रों को दो-तीन उँगलियों से ही उठाकर वह अपने साथियों को सूचना देने चला गया। वहाँ से लौटते समय वह सफ़ेद पदार्थ मैं अपने साथ ले आया। देखिए, इसमें से भी कितनी किरणें निकल रही हैं। हमारी यात्रा तो सफल हो गई डाक्टर! मैं आपको कितने धन्यवाद दूँ कि आप मुझे अपने साथ ले आये। पृथ्वी पर लौटकर जब हम लोग जाएँगे तो इससे चाहे जिस रोगी को अच्छा कर सकेंगे।

मंजुल : ज़रा मुझे दीजिए, मैं चखूँ।

शेखर : **रोकते हुए** : अभी नहीं। पहले मैं इसकी परीक्षा करूँगा। इसका जो प्रभाव यहाँ के मानव पर पड़ा है, वह हम पर भी पड़े, यह आवश्यक नहीं है। संभव है, प्रभाव कुछ दूसरा ही हो। इसकी परीक्षा आवश्यक है।

दिलीप : डाक्टर, आप चाहें जैसी परीक्षा करें, किन्तु मुझे विश्वास है कि हम पर भी इस रस का प्रभाव वैसा ही पड़ेगा। देखिए यह पदार्थ धातु है, इस पात्र में है, किन्तु अपने तेज के कारण आर-पार देखा जा सकता है।

: नेपथ्य में कोलाहल। नारी पुरुषों का यह कोलाहल ठीक वैसा ही है, जैसा बाँसुरी और मृदंग की ध्वनि का मिला-जुला रूप होता है। यह कोलाहल धीरे-धीरे पास आता जाता है। :

शेखर : यहाँ के निवासियों का कोलाहल! यह क्यों हो रहा है?

मंजुल : यह कोलाहल धीरे-धीरे पास आता हुआ जान पड़ता है।

शेखर : हाँ, पास आता जा रहा है। इस लोक के इतने निवासी यहाँ किसलिए आ रहे हैं?

दिलीप : मेरा अनुमान है कि विस्फोट से मिली हुई चीज़ें देखकर ही ये

इतने प्रसन्न हैं। अपनी पुरानी सभ्यता के चिह्न देख कर ये फूले नहीं समाते। देखिए, कितनी शीघ्र ये द्वार पर आ गये!

मंजुल : स्त्रियों का कंठ-स्वर अधिक उभरा हुआ है।

शेखर : तो उन व्यक्तियों की बातें समझने के लिए अपने सामने यह अणु-भाष-यंत्र रख लूं। कोलाहल कुछ शान्त हो रहा है।

: यंत्र रखने की ध्वनि होती है। यंत्र से जो भाषा निकलती है, वह बहुत सुरीली है। चन्द्र-पुरुष की भाषा सरोद के स्वर की है और चन्द्र-नारी की भाषा सितार के स्वर की है। शीघ्र ही कोलाहल शान्त हो जाता है। :

चन्द्र-पुरुष : **आगे बढ़ते हुए :** भारत के महापुरुषों का यश हमारे लोक के सूर्योदय की भाँति सुख देने वाला हो!

शेखर : धन्यवाद।

चन्द्र-पुरुष : भारत की इस स्त्री का यश तारों की ज्योति की भाँति निखरा रहे।

मंजुल : धन्यवाद।

चन्द्र-नारी : हम समस्त चन्द्र-जनता की ओर से बोल रहे हैं। भारत के पुरुषों ने यहाँ आकर अपने प्रेम का परिचय दिया है।

शेखर : हमारे प्रेम को पहचानने में आपकी कृपा है।

चन्द्र-नारी : उस प्रेम के कारण मैं आपको अपने लोक का जनगीत सुनाऊँगी।

: सितार की मीड़ के स्वर में ध्वनि उठती है :

शून्य की गति बीच
रह-रह नाचते अणु के अखंडित रूप
रह-रह नाचते

शून्य की नीहारिका के केन्द्र-बिन्दु अनूप
रह-रह नाचते,
रह-रह नाचते ।

: कुछ देर तक ध्वनि लहराती रहती है :

मंजुल : उल्लास के स्वरों में : बहुत मधुर है ! बहुत सुन्दर है ! आपका कंठ कितना कोमल है ! आपके इस प्रेम के लिए अनेक धन्यवाद ।

विलोप : तारों के संगीत की ध्वनि से आपने अपना कंठ मिला लिया है । बहुत सुन्दर ! आप जितनी सुन्दर हैं, उतना ही सुन्दर आपका कंठ है !

चन्द्र-नारी : आप अच्छी बातें करते हैं ।

शेखर : चन्द्रलोक के नागरिको ! आप लोगों ने जिस प्रेम से हम भारत-गामियों का स्वागत किया है, वह हमारे भविष्य के लिए भी मंगलमय है । हमारी पृथ्वी अपने बिछड़े हुए अंग चन्द्र से फिर मिल रही है और दोनों लोक अलग-अलग रहकर भी मानव कल्याण के लिए आविष्कार करने में एक ही रहेंगे ।

चन्द्र-पुरुष : हमारे लोक अलग-अलग भी नहीं रहेंगे । हम लोग अपने आविष्कारों से ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि धीरे-धीरे हमारा यह लोक, जिसे आप चन्द्रलोक कहते हैं, आपके लोक से—जिसे आप पृथ्वी कहते हैं—बिना किसी झटके से जुड़ जाय और हम दोनों एक ही नक्षत्र के निवासी बन जायँ ।

चन्द्र-नारी : आप भी अपने आविष्कारों से यही करें । आप हमारी ओर बढ़ें, हम तो आपकी ओर बढ़ेंगे ही । यदि हम दोनों के लोकों के चुम्बकीय क्षेत्र विचलित नहीं हुए, तो हम अपनी कक्षाएँ समीप ले आयेंगे और आकाश के किसी अन्य ग्रह से टकराने की संभावना आने ही नहीं पाएगी । केवल सावधानी की आवश्यकता है ।

शेखर : हम भी इसके लिए प्रयत्न करेंगे। हमारे लोक में अब भी मानव युद्ध में विश्वास रखता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की उन्नति सहन नहीं करता, किन्तु हमारा देश शान्ति और प्रेम में विश्वास रखता है, आपके सम्पर्क में आकर मानव-भावना के प्रति सदैव के लिए अपने प्रेम की निधि खोल देगा और दोनों के बीच में आपके लोक की अमृत-धारा प्रवाहित होगी।

चन्द्र-पुरुष : आज हम बहुत प्रसन्न हैं। आपने दूसरे लोक से आकर हमारे लोक का ही अमृत-रस हमें दिया है। हमने भी अपने लोक में अनेक विस्फोट किये, किन्तु अमृत-रस हमें नहीं मिला। इसे आप एक अच्छे संयोग की बात समझ लीजिए कि आपके लोक के एक आविष्कारक ने ऐसा भूमि-स्फोट किया कि उससे हमें केवल अमृत-रस ही नहीं मिला, वरन् हमारी प्राचीन सभ्यता की अनेक वस्तुएँ मिलीं। आज हमारे हृदय में आत्म-गौरव की एक नयी ज्योति जागी है। इस उपकार के लिए हम आपको कुछ भेंट करना चाहते हैं। आप स्वीकार करेंगे ?

शेखर : आपका प्रेम ही हमारे लिए बहुत है। हमें आपकी मित्रता चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं।

दिलीप : मैं केवल आपके अमृत-रस का थोड़ा-सा हिस्सा चाहता हूँ जिसे मैं अपने लोक में ले जा सकूँ। आपके लोक में तो किसी प्रकार का रोग नहीं है। हमारे यहाँ अभी तक अनेक रोग हैं। आपके अमृत-रस से मैं अपने लोक के रोगों को सदा के लिए नष्ट कर दूँगा।

चन्द्र-पुरुष : आप जितना चाहें, उतना अमृत-रस यहाँ से ले जा सकते हैं, लेकिन हम कुछ और भी भेंट करना चाहते हैं। उसे भी स्वीकार करें।

शेखर : वह क्या ?

चन्द्र-पुरुष : एक चन्द्र-कुमारी हम आपकी पृथ्वी को अर्पित करना चाहते

हैं। इससे हम लोगों में मिलाप तो होगा ही, पृथ्वी और चन्द्र भी आपस में मिलने के लिए जल्दी से जल्दी अपनी कक्षाएँ निकट लायेंगे। तब हमारे स्त्री-पुरुष एक होंगे। हमारी जनता एक होगी। हम दो लोकों के बीच में प्रेम और मैत्री के अतिरिक्त फिर कुछ न रह जाये।

मंजुल : मैं आपकी इस भावना की सराहना करती हूँ।

दिलीप : लेकिन यह अणु-माप-यंत्र भी हम लोगों के बीच में रहना चाहिए, जिससे हम एक-दूसरे की भाषा न जानते हुए भी परस्पर बातें कर रहे हैं। बिना इस यंत्र के हम इस चन्द्र-कुमारी से किस प्रकार बातें कर सकेंगे। यह चन्द्र-कुमारी भी हमसे कुछ नहीं कह सकेगी।

चन्द्र-पुरुष : यह यंत्र भी हम आपको भेंट करेंगे।

मंजुल : और फिर मैं इस चन्द्र-कुमारी से इसकी चन्द्रीय भाषा सीख लूँगी और इसे मैं अपनी हिन्दी सिखला दूँगी।

चन्द्र-पुरुष : यह कुमारी हमारे लोक में सबसे अधिक सुन्दरी है। विज्ञान का आविष्कार करने में इसकी प्रतिभा सराहनीय है। इसकी सहायता से पृथ्वी और चन्द्र परस्पर शीघ्र ही मिलेंगे। इसी ने आपके सामने हमारे लोक का जनगीत गाया है।

शेखर : मैं इस चन्द्र-कुमारी की प्रशंसा करते हुए इसका अभिनन्दन करता हूँ। आपकी भेंट सिर-माथे स्वीकार है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी पृथ्वी का जल-वायु इस चन्द्र-कुमारी के अनुकूल रहेगा अथवा नहीं। इसे हानि हो सकती है और हम आपकी भेंट की सुरक्षा में असमर्थ हो सकते हैं। हमारी पृथ्वी में अनेक प्रकार के रोग हैं। इसे कोई भी रोग हो सकता है। इसकी प्राण-हानि हो सकती है। फिर हम आपको क्या उत्तर देंगे ? दीर्घ जीवन पर अभी तक हम अधिकार नहीं कर सके। आपके पास अमृत है, हमारे पास वनस्पति घी, डालडा

जिसके अधिक प्रयोग से हृदय की गति बन्द हो सकती है। जब हमारी रोग-मुक्त पृथ्वी आपकी भेंट स्वीकार करने योग्य हो जायगी, तब हम कृतज्ञता के साथ आपकी यह भेंट स्वीकार करेंगे।

चन्द्र-पुरुष : यह बात सुनकर हमारे हृदय में आपके प्रति संवेदना है। हमारे लोक में प्रकृति के अनेकानेक रूप हैं, इसलिए हमारे शरीर में सब प्रकार की परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता है। किसी भी देश में जाकर हमारे शरीर स्वस्थ रह सकेंगे। किन्तु हम आपकी इच्छा का आदर करेंगे। यह कुमारी यहीं रहेगी और आज से इसका नाम 'पृथ्वी' होगा।

मंजुल : यह नाम तो बहुत ही अच्छा रहेगा।

शेखर : हमारी इच्छा का आदर करने के लिए आपको अनेक धन्यवाद। हम भी अपनी ओर से अपनी राष्ट्रीय ध्वजा स्नेह-चिह्न के रूप में भेंट करते हैं। कृपया इसे स्वीकार कीजिए। हम लोग तो यहाँ से शीघ्र चले जाएँगे। यदि किसी अन्य लोक का कोई मानव यहाँ आये तो आप इस ध्वजा को दिखलाकर कह सकें कि हमारे चन्द्रलोक में सर्वप्रथम भारत के जनतंत्र के तीन नागरिक आए थे। यह हमारी राष्ट्र-ध्वजा स्वीकार कीजिए। : **ध्वज देता है**। : आप इसका सदैव सम्मान करें।

चन्द्र-पुरुष : इस राष्ट्र-ध्वजा के लिए अनेक धन्यवाद। हम इस ध्वजा को इसी कक्ष में स्थापित करेंगे और सदैव ही इसका सम्मान करेंगे।

शेखर : हम सब आपके इस निर्णय से सुखी हुए। हम कल सूर्योदय होते ही आपसे विदा लेंगे। हमें आप हमारे यान तक पहुँचा देने का कष्ट करें। इस बीच में अपना यंत्र भी ठीक कर लूँगा जो लौटते समय हमारे राकेट यान को अधिक शक्तिशाली बना सके।

चन्द्र-कुमारी : आपकी यात्रा मंगलमय हो। मैं पृथ्वी हूँ। आप अपने आविष्कारों में सफल हों कि 'पृथ्वी' पृथ्वी में आ सके।

मंजुल : बहन ! मैं सदैव अपने पिताजी को पृथ्वी-चन्द्र मिलन के आविष्कारों के लिए प्रेरित करती रहूँगी।

चन्द-पुरुष : अब हम सब प्रस्थान करेंगे। आपकी यात्रा मंगलमय हो। आपका अमृत-रस आपके पास अभी पहुँचा दिया जाएगा।

क्रमशः चन्द्रवासियों के जाने की ध्वनि। कुछ देर शान्ति रहती है। :

शेखर : हमारी यह यात्रा सफल रही। अब हमारी पृथ्वी और चन्द्र का सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा। और मानव युद्ध की बात भूलकर प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की भावना से रहना सीखेगा।

मंजुल : पिताजी ! हम लोग फिर यहाँ कब आयेंगे ?

शेखर : शीघ्र ही ! अपने राष्ट्र को सूचना देकर। दूसरी बार हम यहाँ अधिक दिनों के लिए आयेंगे।

दिलीप : तब तक आप अमृत-रस की परीक्षा भी कर लेंगे। हम सब अमृत-रस का प्रभाव लेकर फिर इस चन्द्रलोक में आयेंगे।

: कक्ष में चन्द्रलोक के राष्ट्रीय संगीत की तरंग हलकी ध्वनि में फिर आती है। :

मंजुल : यह संगीत फिर क्यों होने लगा ?

शेखर : चन्द्र-निवासियों के उल्लास का दिन है। वे नाच-गान में आनन्द-विभोर हैं। चलो, हम लोग भी दूसरे कक्ष में चलें।

: सब दूसरे कक्ष में जाते हैं। वातावरण में चन्द्र-लोक का संगीत गूँजता रहता है। :

•

•

अंक—३

इस अंक के

पात्र

•

डा० शेखर : एक महान् वैज्ञानिक ।

कुमारी मंजुल : डा० शेखर की पुत्री ।

डा० दिलीप : चिकित्सा-शास्त्र में निपुण डाक्टर ।

श्रीमती सत्या : डा० दिलीप की पत्नी ।

सुधीर : डा० शेखर का नौकर ।

:
:

अमृत की खोज

सन् १९६०

: डा० शेखर चन्द्रलोक की यात्रा समाप्त कर पृथ्वी पर वापस आ गये हैं। यात्रा में उनके साथ डा० दिलीप थे और थी डा० शेखर की पुत्री मंजुल। डॉ० दिलीप ने चन्द्र-मण्डल में स्फोट कर भूगर्भ से अमृत की प्राप्ति की थी और यात्रा के नेता डा० शेखर उस अमृत की परीक्षा करने के लिए उसे साथ ले आये थे। अभी उसकी परीक्षा होना शेष है।

परदा उठने पर डा० शेखर का प्रयोग-कक्ष दीख पड़ रहा है। दाहिनी ओर के दरवाज़े से बाहर का मार्ग है, बायीं ओर से भीतर के कक्ष की ओर। दीवाल में बायीं ओर खिड़की है जिसमें से एकादशी का चन्द्र दीख पड़ता है। उसके समीप बीचोंबीच एक आलमारी है जिसमें विविध खिलौने और मूर्तियाँ हैं। बीच के ख़ाने में एक पात्र है जिसमें अमृत रक्खा हुआ है। उससे प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। अन्य दीवालों में चन्द्र-मण्डल के चित्र हैं। कुछ प्राकृतिक दृश्यों के भी चित्र।

कमरे के बायें कोने में सामने की ओर टेबल है

जिसके दोनों ओर कुर्सियाँ रक्खी हैं। दाहिने ओर दरवाज़े से हटकर एक सोफ़ा-सेट है। बीच की तिपाई पर एक गुलदस्ता रक्खा है। कमरे में दरी-कालीन और परदे हैं जिनसे सुरुचि का पता लगता है। कोने की आलमारी में कुछ पुस्तकें रखी हैं। आलमारी से हटकर एक यंत्र है जिसमें अनेक प्रकार के रंगों के बल्ब लगे हुए हैं। इनमें लाल रंग के बल्ब की रोशनी तेज़ है।

इस समय कुमारी मंजुल सामने की टेबल पर बैठकर कुछ लिख रही हैं। कुछ ही क्षण बाद वह आलमारी से एक मोटी पुस्तक निकालकर पन्ने उलट-पलटकर कुछ देखती है, फिर चन्द्र-मण्डल के चित्र से उसका मिलान करती है। लौटकर टेबल के समीप आकर फिर लिखने में लीन हो जाती है। कुमारी मंजुल का वेश साधारण-सात्विक है। सफेद सारी, काला ब्लाउज़, माथे पर लाल बिंदी, केश खुले हुए।

कुछ देर बाद श्रीमती सत्या आती हैं। नीले रंग की सारी और सफ़ेद रंग के ब्लाउज में वे अत्यन्त आकर्षक दीख पड़ती हैं। माथे पर कुमकुम और माँग में सिन्दूरी रेखा। हाथों में नीले रंग की चुड़ियाँ। गले में मोतियों की माला। पैरों में कपूरी चप्पल। उनके हाथ में एक पुस्तक है। :

जब श्रीमती सत्या कुमारी मंजुल को लिखने में अत्यधिक लीन देखती हैं, तो वे कुछ देर उसे मुस्कराकर गहरी दृष्टि से देखती हैं। फिर दाहिनी

ओर के सोफ़ा-सेट पर हाथ से कुछ शब्द करती हैं। मंजुल चौंककर देखती है :

मंजुल : प्रसन्नता के स्वरों में : ओह, सत्या भाभी ! आओ न ? आप कब से खड़ी हैं ? : हाथ पकड़कर लाती है। :

सत्या : मैंने सोचा, कहीं वेद-व्यासजी के महाभारत लिखने में बाधा न पड़ जाय ! चन्द्र देवता : खिड़की की ओर संकेत करते हुए : भी सोचते होंगे कि उनका इतिहास लिखने वाले महा-पुरुष....नहीं नहीं, महानारी ने अवतार ले लिया ! वे भी इस महानारी के दर्शन के लिए खिड़की से झाँक रहे हैं।

मंजुल : भाभी ! तुम तो हँसी करती हो। चन्द्रलोक की साधारण डायरी लिखने में मैं 'महानारी' हो गई ? सोचा था, अपनी चन्द्रलोक की यात्रा की मधुर स्मृतियाँ कहीं भूल न जाऊँ। इसलिए उन्हें एक डायरी के रूप में लिख लूँ ! आइए, बैठिए। : दोनों बैठती हैं। :

सत्या : मधुर स्मृतियाँ ? ऐसी कौन-सी मधुर स्मृतियाँ हैं ? एकआध मधुर स्मृति मैं भी सुनूँ ?

मंजुल : मधुर स्मृतियाँ तो तुम्हारी संपत्ति हैं, भाभी ! मेरी मधुर स्मृति तो केवल नये स्थान की नई शोभा देखने की है। चन्द्रलोक की सभी बातें अजीब हैं। उनकी स्मृति ही मधुर स्मृति है।

सत्या : ये सब बहलाने की बातें हैं। : गहरी साँस छोड़कर : अच्छी बात है, मत बतलाओ ! अब यही देखो, अगर कोई नशीली स्मृति न होती तो क्या तुम लिखने में ऐसी डूब जातीं कि कोई तुम्हें उठा भी ले जाय तो पता न चले ! : हलकी हँसी :

मंजुल : तुम्हीं उठा लो, भाभी ! तुम्हारे हृदय से लगकर सोचूँगी कि स्वर्ग का कोई कोना मिल गया।

सत्या : स्वर्ग का या चन्द्रलोक का ? वहाँ भी तो किसी का हृदय धड़-कता छोड़ आई होगी ? : फिर हँसी :

मंजुल : तुम साथ चलीं ही नहीं, नहीं तो ऐसा कुछ हो सकता था। मेरे साथ क्या होता ! फिर चन्द्रलोक के निवासी भी क्या हैं। : **हाथ से बतलाकर** : सिर इतना बड़ा, बिलकुल घड़े के बराबर, चाहो तो उसमें अचार डाल लो और पैर इतने छोटे, जैसे तुम्हारे मुन्ना के हैं। बुढ़ापे का सिर और बचपन के पैर ! बस यही समझ लो, आधुनिक चित्रकला का नमूना !

सत्या : अरे, आधुनिक मूर्तिकला कहो। मालूम होता है, चन्द्रलोक में आधुनिकता हर चीज में समा गयी है। इच्छा तो मेरी भी थी कि मैं वहाँ की आधुनिकता देखती, लेकिन फिर मुन्ना को यहाँ कौन देखता ? मैं नहीं चल सकी, कोई बात नहीं, तुम्हारे भाई साहब तो तुम्हारे साथ गये थे।

मंजुल : अरे, भाभी ! उन्होंने वहाँ कमाल कर दिया ! चन्द्रलोकवासी भी चकित रह गए। डाक्टर भाई साहब ने अपनी डाक्टरी उस बेचारे चन्द्रमा पर भी दिखलायी। हम लोग चन्द्र-मंडल में अमृत मानते हैं न ? उन्होंने चन्द्रमा में अमृत की खोज कर ली।

सत्या : हाँ, वे कह रहे थे कि उन्होंने चन्द्रलोक के एक निवासी के साथ ऐसा विस्फोट किया कि भूगर्भ से एक गाढ़ा-सा सफेद पदार्थ निकल आया। उसे लेकर वे यहाँ आये। **आलमारी की ओर संकेत करते हुए।** : शायद वही यह अमृत है जो आलमारी में रखा हुआ है। ओह ! प्रकाश की कितनी किरणें फेंक रहा है। : **पास जाती है।** :

मंजुल : भाभी ! ये किरणें कितनी सुन्दर और शीतल हैं ! इनके देखने भर से कितनी शान्ति और शीतलता प्राप्त होती है ! यदि इसका उपयोग संसार के लिए सुलभ हो जाय तो हमारी चन्द्रलोक की यात्रा सफल हो जाती !

सत्या : तुम्हारे डाक्टर साहब तो इसके लिए बड़े व्याकुल हैं। सदैव इसी की बातें करते हैं। उनका तो विश्वास है कि यह अमृत मनुष्य को न जाने कितनी शक्ति दे सकता है।

मंजुल : इसमें कोई संदेह नहीं।

सत्या : वे तो इसका स्वाद चन्द्रलोक में ही लेना चाहते थे, किन्तु तुम्हारे पिताजी ने उन्हें रोक दिया कि वे पहले इसकी परीक्षा करेंगे।

मंजुल : हाँ, पिताजी पहले छोटी से छोटी चीज़ की परीक्षा कर लेते हैं, तब उसका उपयोग करते हैं। तभी तो उन्हें अपने प्रयोगों पर इतना विश्वास है। यद्यपि इस अमृत की शक्ति पर उनका भी विश्वास है, फिर भी वे पहले उसकी परीक्षा करेंगे। वे कहते हैं कि इस अमृत का जैसा प्रभाव चन्द्र-मानव पर हुआ है, वैसा ही प्रभाव पृथ्वी के मानव पर हो, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता।

सत्या : उनका कहना सही है, तो फिर वे उसकी परीक्षा कर लें, प्रयोग करने में सरलता होगी।

मंजुल : प्रयोग तो उन्होंने कल ही किया था। पहले वे जड़ पदार्थों पर इसका प्रयोग कर रहे हैं। उन्होंने एक सूखा हुआ डंठल लिया। उस पर उन्होंने इस अमृत का प्रयोग किया। कल ही उसमें फूल निकल आये। देखो न ? **फूलदान की ओर संकेत कर :** फूलदान में जो गुलदस्ता सजा हुआ है, वह उसी सूखे डंठल का है।

सत्या : **आश्चर्य से गुलदस्ते के पास जाती है। :** सूखे डंठल से इतना सुन्दर गुलदस्ता ? फूल तो बड़े सुन्दर निकल आये हैं। वास्तव में यह अमृत का ही प्रभाव है। इतने अच्छे फूल तो स्वाभाविक रूप से भी नहीं निकलते !

मंजुल : सचमुच ही ये फूल अद्‌भुत हैं।

सत्या : कब तक ये फूल इसी तरह से रहेंगे । शायद ये कभी मुरझायें भी नहीं ।

मंजुल : पिता जी यही तो देखना चाहते हैं कि ये फूल कब तक ताज़ा रहते हैं ।

सत्या : तो अब पिताजी से कहो कि वे जीवित पदार्थों पर भी अमृत का प्रयोग करके देखें ।

मंजुल : अवश्य कहूँगी ।

सत्या : हाँ, तुम्हारे भाई साहब बहुत उत्सुक हैं । वे मानव पर अमृत का प्रभाव जल्दी देखना चाहते हैं ।

मंजुल : उनकी उत्सुकता तो स्वाभाविक है, भाभी ! अमृत-प्राप्ति की सूचना सबसे पहले तो उन्होंने ही दी थी ! पिताजी भी उनकी उत्सुकता जानते हैं ।....और मैं भी जानती हूँ । मैं पिताजी से अवश्य कहूँगी ।

सत्या : हाँ, कहकर देखना । अच्छा, अब जाऊँगी, बहन ! यह पुस्तक ....यह पुस्तक : **पुस्तक देते हुए** : मैं पढ़ चुकी । बड़ी मनोरंजक है । इसे ही लौटाने आयी थी । कल दूसरी पुस्तक ले जाऊँगी, आज तो मैं बहुत व्यस्त हूँ । अच्छा.... : **उठती है** । :

मंजुल : कुछ देर और बैठो न, भाभी !

सत्या : नहीं बहन ! अब जाऊँगी । तुम्हारा मुन्ना घर पर शोर मचा रहा होगा । हाँ, और अपनी डायरी जल्दी समाप्त करना, उसे पढ़ने की मेरी बड़ी इच्छा है

मंजुल : अच्छी बात है । मैं इसे जल्दी ही समाप्त करूँगी । : **हाथ जोड़ती है** । :

सत्या : **हाथ जोड़कर** : नमस्ते । : **प्रस्थान** :

: मंजुल कुछ दूर तक सत्या को पहुँचाती है। लौटकर सत्या की दी हुई पुस्तक आलमारी में रखती है। फिर टेबल पर बैठकर लिखने लगती है। कुछ देर बाद सुधीर को पुकारती है। :

मंजुल : सुधीर ! : कोई उत्तर नहीं मिलता। कुछ देर में फिर पुकारती है। : सुधीर !....ओ सुधीर....जाने कहाँ चला गया। सुधीर !

नेपथ्य से : आये सरकार ! : **सुधीर का प्रवेश** :

मंजुल : सुधीर ! पिताजी कहाँ हैं ?

सुधीर : सरकार ! बगैचा माँ अहीं। हम हूँ अबहिन तक बगैचा माँ रहे। सरकार ! बड़ा गजब होइ गवा !

मंजुल : क्यों ? क्यों ? क्या हुआ ?

सुधीर : सरकार ! ऐसन बात तो कतहूँ देखी-सुनी ना ?

मंजुल : अरे, तो बतलायेगा कि क्या हुआ ?

सुधीर : सरकार ! ऐसन महनामथ भवा कि काव कहीं।

मंजुल : महनामथ क्या ?

सुधीर : आपन पालतू नेवरा जौन परताप रहा न ? ओहि का दंगल होइ गवा एक जबरजंग किरवा कै संग।

मंजुल : किरवा कै संग ?

सुधीर : हाँ, हजूर ! बड़ा भीमपलासी रहा। बिलकुल्ल करिया, जैसन टैलीफून का मोटका तार होय। सूप बराबर त ओहि क फन्न रहा। ऐसन फुफकारत रहा जैसन कौनों बंसुरिया बजावत होय। आपन नेवरा ओहि के संग भिर परा। : गर्व की मुद्रा :

मंजुल : अच्छा, दोनों में लड़ाई हो गई ?

सुधीर : हजूर, ई लराई त जनम-जन्मान्तर ते चलत अहै, सरकार ! लोग कहत हँई, बाघ-हरिन बैर, बिलार-मूसक बैर, नेवर-साँप बैर....

मंजुल : पुराणों का बखान न कर, साफ़-साफ़ बतला ।

सुधीर : हजूर, किरवा आवत रहा, दक्खिन ते । ऐसन घूम-घूम क चलत रहा, जैसन रंगरेजी लिखा जात है । पुरुब ते झपट परा आपन नेवरा । धइ लीन ओहि क फन । : **सारे शरीर से अभिनय कर दिखलाता है** । : करिया आपन फन छुड़ाय के ऐसन चोट किहिस के अगर हमार नेवरा बाबू पैंतरा न बदलत तो बिचरा चूर-चूर होइ जात ! मुदा : **मूँछ पर हाथ फेरते हुए** : वाह रे नेवरा भाई ! ऐसन बेचूक निसाना दिहिस के दंबूक के गोली सरमाय जाय ! : **गर्व की मुद्रा** :

मंजुल : यह तो बतलाता नहीं कि आखिर क्या हुआ । हमारा नेवला मरा तो नहीं ?

सुधीर : नेवरा काहे मरी, सरकार ? मरा ऊ फन-देवता । हमार नेवरा उछरि-उछरि के ओहि का टुकरा-टुकरा कर दिहिस । ऐसन टुकरा किहिस जैसन कौनो फूल की पंखरिया टोर के बिथराय देय । मुदा बेचारा नेवरा चोटियाय गवा ।

मंजुल : कैसी चोट लगी ?

सुधीर : ऊ करिया जैसन नेवरा पै आपन फन पटकिस, हमार नेवरा उछल गवा, मुदा एक आध दांत तो ओहि क लगिन गवा । खून भरभराय उठा ।

मंजुल : अच्छा ?

सुधीर : मुदा हमार मालिक, वाह वा ! सरकार ! वाह वा ! पहलवान बाबा की किरपा ते छछात धनवनतर भगवान कै औतार अहीं । ओ जादुऔ जानत अहीं । नेवर उप्पर ऐसन जादू किहिन कै खून गिरै क बात का, ओहि क घाव और चमड़ा

सगर चौचक होइ गवा । अब जौन ओहि क देखौ तो जनबै न परी कि नेवर भैया क कौनो चोट लगी रही । हमार मालिक अगर डाकघरी करैं त कौनो ससुर मरै क नामौ न लेई ! हाँ !

मंजुल : मुस्कुराकर : तो पिताजी वहीं हैं ? : नेपथ्य की ओर देखकर : अरे, यहीं आ रहे हैं ।

: डॉ० शेखर का गंभीर मुद्रा में प्रवेश । आँखों पर चश्मा । सफेद घुँघराले बाल, जो कंधों पर बिखरे हुए हैं । शरीर पर एक गाउन और पैजामा । पैरों में चप्पल ।

शेखर : क्या बात है ? : सुधीर से : सुधीर ! तुम बाहर जाओ ।

सुधीर : सिर झुकाकर : जौन हुकुम होय, सरकार ! : प्रस्थान :

शेखर : मंजुल ! अमृत का प्रयोग सफल रहा ।

मंजुल : प्रसन्नता से : सफल हो गया, पिताजी ? कैसे ?

शेखर : अपने बगीचे में एक साँप निकला था ।

मंजुल : हाँ, पिताजी ! अभी सुधीर कह रहा था ।

शेखर : मैंने उस पर अपना नेवला छोड़ दिया । ओह, दोनों में घनघोर युद्ध हुआ । जीतना तो नेवले को ही था—पर बेचारा बहुत बुरी तरह से चोट खा गया । उसके शरीर से रक्त चूने लगा । मैंने अमृत में डुबाई गयी सींक उसे सुँघा दी । सुँघाते ही उसका घाव भर गया और उसका चमड़ा भी तत्काल जुड़ गया !

मंजुल : उसका चमड़ा भी जुड़ गया ?

शेखर : हाँ, चमड़ा भी जुड़ गया, और मुझे एक बात मालूम हो गयी ।

मंजुल : क्या पिताजी !

शेखर : इस अमृत का सम्बन्ध पृथ्वी की किसी जड़ी से है ।

मंजुल : हमारी पृथ्वी की जड़ी से ?

शेखर : हाँ, तुमने वाल्मीकि रामायण तो पढ़ी है न ? उत्तरकाण्ड में जब मेघनाद के प्रहारों से प्रभु राम की सेना के अनेक वानर मर गए और क्षत-विक्षत हो गए तब जाम्बवान् ने महावीर

हनुमान से हिमालय की चार जड़ियाँ लाने को कहा। वाल्मीकि रामायण का श्लोक है :

मृत संजीवनी चैव, विशल्यकरणीमपि।
सावर्ण्यकरणी चैव, संधानकरणी तथा॥

यानी, मृत संजीवनी जो मरे को जिला दे, विशल्यकरणी जो घावों को अच्छा कर दे, सावर्ण्यकरणी जो घावों का रंग बदलकर शरीर की भाँति कर दे और संधानकरणी जो घाव भरकर खाल को जोड़ कर एक-सा कर दे।

मंजुल : बड़ी चमत्कारपूर्ण जड़ियाँ हैं!

शेखर : हाँ, इन दिव्य ओषधियों की गंध सूँघकर घायल वीर वानरों के घाव अच्छे हो गए। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं :

सर्वे विशल्या विरुजः क्षणेन
हरि-प्रवीरा निहताश्च ये स्युः।
गन्धेन ता सां प्रवरौषधीनां
सुप्ता निशान्तेष्विव सं प्रबुद्धाः॥

—यानी एक क्षण में सबके घाव भर गये और सब चंगे हो गये। उन उत्कृष्ट जड़ी-बूटियों की महक ही से, वे वानर वीर भी जो मर गये थे, जीवित हो ऐसे उठ बैठे, जैसे सोता हुआ आदमी रात बीतने पर उठ बैठता है।

मंजुल : आश्चर्य है!

शेखर : ये आश्चर्यपूर्ण ओषधियाँ तो हैं ही। यह जानने के लिए कि चन्द्रलोक के अमृत का सम्बन्ध यदि इन ओषधियों से होगा तो इस अमृत का भी वैसा ही प्रभाव होगा जैसा महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है। और यह जानकर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा कि इस अमृत के सूँघने मात्र से वैसा ही प्रभाव हुआ। हमारे नेवले के शरीर का प्रत्येक घाव उस अमृत के सूँघने से ही अच्छा हो गया।

मंजुल : पिताजी ! आपकी सूझ तो अद्वितीय है। अब यदि नेवले के शरीर पर इसका प्रभाव अच्छा हुआ तो मानव के शरीर पर भी अच्छा होगा।

शेखर : अभी इसमें सन्देह है। नेवले का शरीर विष के प्रभाव को किसी सीमा तक सहन कर सकता है, मनुष्य का शरीर ऐसा नहीं है। हमें यह देखना होगा कि मानव-शरीर पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। मानव-शरीर के पहले वानर-शरीर पर इसका प्रयोग आवश्यक होगा।

मंजुल : **सोचते हुए** : एक बात समझ में नहीं आई, पिताजी ! चन्द्रलोक के अमृत का सम्बन्ध पृथ्वी की इन चार जड़ियों से कैसे संभव हो सकता है ?

शेखर : तुम्हारी शंका ठीक है, बेटी ! मेरा अनुमान है कि जब चन्द्रमा पृथ्वी से टूटकर अलग हुआ होगा, तब वह हिमालय के स्थान से ही टूटा होगा। टूटने के वेग के कारण समीपवर्ती भाग भी खिंचा होगा। जैसे हनुमान जब समुद्र पार करने के लिए उछले, तब जिस पर्वत से वे कूदे थे, वह भी उनके वेग से उछल गया। इसी प्रकार जब चन्द्रमा टूटकर अलग हुआ तो समीपवर्ती हिमालय भी खिंचा और उसकी चोटी एवरेस्ट इतनी खिंच गयी कि उसकी ऊँचाई उनतीस हज़ार दो फ़ीट हो गयी। हिमालय का भाग होने के कारण चन्द्रमा उन्हीं जड़ी-बूटियों से पूर्ण है जो हिमालय में हैं। यही कारण है कि इस अमृत में : **अमृत की ओर संकेत करते हैं।** : वैसा ही प्रकाश है, जैसा उन चार ओषधियों में कहा जाता है।

मंजुल : आपका अनुमान बिलकुल सही ज्ञात होता है। हम लोग तो चन्द्रवासियों से मिल भी आये, किन्तु अमेरिका और रूस के वैज्ञानिक तो चन्द्रमा को मात्र वीरान और उजाड़ ही मानते

हैं । उन वैज्ञानिकों की खोजें हमारी चन्द्र-सम्बन्धी सारी मान्यताओं को निर्मूल कर रही हैं । यह चन्द्रमा जो हमारे लिए देवता है, जिसकी सुन्दरता से हमारा रोम-रोम प्रसन्न हो उठता है, जिसके आधार पर हम न जाने कितनी उपमाएँ देते हैं, वे सब इनकी खोजों से हास्यास्पद हो गयी हैं । उनका विज्ञान जैसे हमारे ज्ञान की हँसी उड़ा रहा है ।

शेखर : समय अनन्त है, मंजुल ! भविष्य अपने अन्तराल में क्या-क्या छिपाये है, यह कौन जानता है ! क्रमशः विज्ञान हमारे ज्ञान का समर्थन ही करेगा ।

मंजुल : और जब आप अमृत का प्रभाव संसार के सामने स्पष्ट करेंगे तो सारा संसार चकित रह जायगा ! नेवले पर आपने जो प्रयोग किया है, वही चिकित्सा-संसार में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा । और वानर पर यदि आपका प्रयोग सफल हो गया, तो मानव-जगत् भी अजर-अमर हो जाएगा । अच्छा, पिताजी ! वानर पर प्रयोग कब होगा ?

शेखर : उसके लिए अभी कुछ दिनों तक रुकना होगा । पहले यह देखना होगा कि पृथ्वी के अन्न-जल से इस अमृत का क्या सम्बन्ध है !

मंजुल : कृपया यह प्रयोग शीघ्र ही करें । डॉ० दिलीप इस अमृत के उपयोग के लिए बहुत आतुर हैं । अभी भाभी सत्या भी आई थीं । वे भी प्रयोग के लिए अपनी आतुरता दिखला रही थीं ।

शेखर : उनकी आतुरता स्वाभाविक है । डॉ० दिलीप ने चन्द्र की भूमि पर विस्फोट किया था और अमृत की प्राप्ति की थी । फिर वे डाक्टर भी हैं । यदि अमृत पृथ्वी के अनुकूल हो गया तो वे न जाने कितनी दवाओं का निर्माण करेंगे । चन्द्रवासियों ने हमें अमृत देकर वास्तव में बहुत उपकार किया है : **स्मरण कर :** हाँ, तुम्हारी चन्द्रलोक की डायरी पूर्ण हुई ?

मंजुल : मैं वही तो पूरी कर रही थी कि भाभी आ गयीं। मैं उसे जल्दी ही पूरी करूंगी।

शेखर : अच्छी बात है, तुम अपनी डायरी पूरी करो। मैं एक बार फिर अपने नेवले को देखूंगा। : **प्रस्थान** :

मंजुल : पिताजी के प्रयोग वास्तव में आश्चर्यजनक हैं, वह नेवला इतनी जल्दी ठीक हो गया। मैं भी उसे देखूंगी—पर पिताजी डायरी पूरी करने को कहते हैं। अच्छा, मैं उसे जल्द ही पूरी कर लूं।

: **सोचकर लिखने बैठती है। पहले पढ़ती है।** :

चन्द्रलोक से अपनी पृथ्वी के दर्शन! हमारी पृथ्वी कितनी सुन्दर दीख पड़ती है। चन्द्रलोकवासी चाहते हैं कि पृथ्वी और चन्द्र के चुम्बकीय क्षेत्र ऐसी समकोण रेखाओं में हों कि बिना किसी झटके से चन्द्र पृथ्वी से मिल जाय और दोनों नक्षत्र मिलकर....

: **बाहर से डा० दिलीप का स्वर** :

दिलीप : डाक्टर साहब हैं ? : **कुछ ठहरकर** : मंजुल! बेटी मंजुल!

मंजुल : **उठकर** आइए, डाक्टर साहब! **डायरी बन्द करते हुए** : यह डायरी जल्दी पूरी नहीं होगी। हर समय कोई न कोई बाधा : **झुँझलाहट भरी मुद्रा** :

: **डा० दिलीप का प्रवेश! काले पैंट और सफेद बुशशर्ट में। बाल अस्त-व्यस्त** :

दिलीप : हलो, मंजुल! मालूम होता है, कुछ लिख-पढ़ रही थीं।

मंजुल : डाक्टर साहब! चन्द्रलोक की इस डायरी में आपकी तारीफ़ लिख रही थी। सुनेंगे? सुनिए। आपने किस तरह विस्फोट किया! ऐसा आश्चर्यजनक विस्फोट! पृथ्वी पर अमृत की प्राप्ति....देखिए, मैंने लिखा है—: **पृष्ठ खोलकर पढ़ती हुई** : प्रसिद्ध डाक्टर दिलीप ने चन्द्रमा की भूमि पर ऐसा विस्फोट

किया कि शताब्दियों की विस्मृत वस्तुओं के साथ अमृत की धारा फूट पड़ी ! वह अमृत जो मनुष्य को अजर और अमर बना सकता है। अब राजा इन्द्र की भाँति डा० दिलीप पृथ्वी पर अमृत बाँटकर मनुष्य की आयु को देवताओं की आयु बना देंगे। उन्होंने ऐसा कार्य कर....

दिलीप : बीच ही में : अरे इतनी प्रशंसा न करो। विस्फोट से अमृत तो मैंने प्राप्त किया, किन्तु अभी तक उसे हाथ नहीं लगा सका। उसके उपयोग की बात तो दूर है।

मंजुल : नहीं....नहीं....आप ही उसका उपयोग करेंगे; सच्चे अधिकारी तो आप ही हैं, लेकिन उस पर पिताजी को प्रयोग तो कर लेने दीजिए। अभी तक जड़ पदार्थों पर उनके प्रयोग सफल हुए हैं। देखिए, सूखे हुए डंठल से यह ताज़े फूलों का गुलदस्ता....

दिलीप : हाँ, इसकी चर्चा उन्होंने मुझसे की थी। कल मैंने यह गुलदस्ता देखा भी था। बड़े सुन्दर फूल हैं। मैं तो जानता हूँ कि यह अमृत वास्तव में आश्चर्यजनक पदार्थ है।

मंजुल : और आज सुबह उन्होंने उसका प्रयोग नेवले पर किया ?

दिलीप : नेवले पर ? वही अपने घर का नेवला प्रताप होगा।

मंजुल : हाँ, सुबह ही सुबह हमारे बाग में एक भयंकर साँप निकला। पिताजी ने उस पर अपना नेवला प्रताप छोड़ दिया। दोनों में भयानक युद्ध हुआ। प्रताप ने साँप को मार तो डाला, किन्तु उसे अनेक स्थानों पर साँप के दाँत लग गए। पिताजी ने उस पर अमृत का प्रयोग किया। एक सींक अमृत में डुबोकर उसे सूँघा दी। बस, नेवले के घाव तुरन्त भर ही नहीं गए, उसका चमड़ा भी जुड़ गया !

दिलीप : अच्छा, चमड़ा भी जुड़ गया ! महान् शक्ति है अमृत में। अब तुम्हीं देखो कि जब अमृत के सुँघाने मात्र से इतना बड़ा

चमत्कार हो गया, तो उसके खाने से न जाने मनुष्य क्या से क्या न हो जायगा।

मंजुल : आपका कहना ठीक जान पड़ता है। अभी नेवले पर प्रयोग हुआ है; उसके बाद बन्दर पर प्रयोग होगा, बाद में मनुष्यों पर।

दिलीप : लेकिन मैं तो समझता हूँ कि यह व्यर्थ की देरी है। जब छोटे-छोटे जीवों को लाभ हुआ है, तो बड़े-बड़े जीवों और मनुष्यों को भी लाभ होगा। प्राणी-प्राणी तो सब एक से हैं। डा० शेखर को व्यर्थ ही चिन्ता है कि यह अमृत बिना प्रयोग किये मनुष्य को नहीं दिया जाना चाहिए। अरे, अमृत का गुण जड़ और जीव दोनों पर देख लिया। अब और क्या प्रयोग करना शेष रह गया ? मैं तो इसे चन्द्रलोक में ही खाना चाहता था, लेकिन डा० शेखर ने व्यर्थ ही मुझे रोक दिया। अरे, तुमने तो देखा ही था कि चन्द्रलोकवासी में इसके खाने से कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था !

मंजुल : हाँ, मैंने देखा था कि उसके शरीर से प्रकाश की किरणें निकल रही थीं।

दिलीप : मेरे शरीर में भी ऐसा ही परिवर्तन हो जाता। मैं आज दूसरा ही आदमी होता, किन्तु डा० शेखर को यह स्वीकार नहीं हुआ। वे मुझसे बड़े हैं, विश्व के महान् वैज्ञानिक हैं, इसलिए विवश हो गया। इच्छा रहते हुए भी अमृत नहीं चख सका। बिना कुछ कहे, उन्हें अमृत-पात्र सौंप दिया।

मंजुल : आपने ठीक किया, डा० साहब ! पिताजी अपने प्रयोगों में बड़ी सावधानी रखते हैं। वे जीवन को सभी विभूतियों से महान् समझते हैं। उसकी थोड़ी-सी भी हानि वे सहन नहीं कर सकते। फिर आपका जीवन !

दिलीप : अरे, तो मैं भी तो डाक्टर हूँ। ओषधियों के गुणों को पहचानता हूँ। क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जो वस्तु किसी प्राणी के लिए लाभदायक है, वह दूसरे प्राणी को भी लाभ पहुँचायेगी।

मंजुल : डाक्टर साहब ! नेवले के घावों के ठीक हो जाने पर पिताजी ने एक नई बात खोज निकाली।

दिलीप : वह क्या ?

मंजुल : वह यह कि इस अमृत में हिमालय पर्वत पर प्राप्त होने वाली कुछ जड़ियों का गुण वर्तमान है।

दिलीप : ठीक है, यह तो आयुर्वेद में भी कहा गया है कि हिमालय की जड़ियों में चन्द्र के उदय होने पर अद्भुत शक्ति आ जाती है। यद्यपि मैं आयुर्वेद में अधिक विश्वास नहीं रखता, फिर भी हिमालय की जड़ी-बूटियों में अद्भुत प्रभाव मानता हूँ और हमारा हिमालय तो विचित्र ओषधियों का भण्डार है।

मंजुल : इसीलिए पिताजी अमृत के तत्त्वों से उन जड़ियों के गुणों का मिलान करेंगे और इस अमृत से न जाने कितनी नवीन ओषधियों के सूत्र निकालेंगे।

दिलीप : यह सब न जाने कब तक होगा ! मैं तो पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह अमृत मनुष्य में नई शक्तियों का संचार करेगा। इसके उपयोग में व्यर्थ ही विलम्ब हो रहा है। इसका थोड़ा ही भाग खा लेने से यह मानव एक नयी सृष्टि उत्पन्न कर सकता है। : रुककर : अच्छा, तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ?

मंजुल : वे नेवले प्रताप का परीक्षण कर रहे हैं।

दिलीप : मैं डाक्टर शेखर की प्रतिभा का क़ायल हूँ, फिर भी वे न जाने क्यों अमृत के उपयोग की स्वीकृति नहीं देते ! अमृत की ओर संकेत करते हुए : देखो, कितनी प्रकाशमयी किरणें निकल रही

हैं। मेरी इच्छा अभी ही होती है, इस अमृत को चखकर उसका प्रभाव जानूं। इसके खा लेने से शरीर भी दिव्य हो सकता है। : रुककर : अच्छा मंजुल ! मुझे प्यास लग रही है, तुम मुझे एक गिलास पानी पिला सकती हो ?

मंजुल : हाँ, हाँ, अवश्य : **पुकारकर** : सुधीर !....ओ सुधीर ! जाने कहाँ चला गया....शायद पिताजी के पास हो....

दिलीप : ये नौकर कभी-कभी बड़े गंदे हाथों से पानी लाते हैं। यदि कष्ट न हो तो तुम्हीं ले आओ न ?

मंजुल : मैं ही ले आऊँगी। इसमें कष्ट की क्या बात ! यों सुधीर साफ़ रहनेवाला नौकर है।

दिलीप : मैं सुधीर की बात....उसकी बात नहीं कहता....

मंजुल : फिर भी मैं ही पानी ले आऊँगी। यह तो मेरे लिए और भी प्रसन्नता की बात है कि आपके लिए अपने हाथों से पानी लाऊँ। अभी लाई। : **प्रस्थान** :

: मंजुल के जाने पर दिलीप सतर्कता से चारों ओर देखता है। फिर धीरे-धीरे उस आलमारी की ओर बढ़ता है जिसमें अमृत रखा हुआ है। वह आलमारी धीरे से खोलता है। चारों ओर चौकन्नी दृष्टि डालता है। थोड़ी देर तक अमृत की ओर देखता है। फिर दायें-बायें देखकर उस अमृत का कुछ भाग उठाकर खा जाता है। आलमारी में कुछ प्रकाश कम हो जाता है।

एक क्षण के लिए स्टेज पर अंधकार हो जाता है। जब फिर प्रकाश होता है, तो स्टेज पर डाक्टर दिलीप नहीं दीख पड़ते। कुछ क्षणों में मंजुल पानी का गिलास लेकर आती है। दिलीप को न देखकर

: वह विस्मित होती है। वह चारों ओर देखती है। :

मंजुल : कौतूहल से : अरे, डाक्टर साहब क्या चले गये ?

: कोई उत्तर नहीं। :

मंजुल : फिर पुकारकर : डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !

: डा० दिलीप अमृत खाने से अदृश्य हो गये हैं, यद्यपि वे स्टेज पर ही हैं ! :

मंजुल : डा० साहब कहाँ हैं ?

दिलीप : अदृश्य : मैं यहीं हूँ।

मंजुल : आश्चर्य से : यहीं हैं ? कहाँ, मुझे तो नहीं दीख पड़ते !

दिलीप : क्या मैं इतना प्रकाशपूर्ण हो गया कि आपकी आँखें काम नहीं दे रही हैं ?

मंजुल : नहीं, नहीं, मेरी आँखें ठीक हैं, लेकिन आप कमरे में नहीं दीख पड़ते।

दिलीप : अरे, तुम्हारे सामने ही तो खड़ा हूँ !

मंजुल : सामने ही खड़े हैं, फिर दिखाई क्यों नहीं पड़ते ?

दिलीप : मैं दिखाई नहीं पड़ता ? लेकिन मैं तो आपको देख रहा हूँ।

मंजुल : लेकिन मैं आपको नहीं देखती।

दिलीप : बड़ी विचित्र बात है !

मंजुल : यह आपको क्या हो गया, डॉ० दिलीप ?

दिलीप : क्या हो गया ? प्रभाव तो दिव्य होना चाहिए। अमृत का प्रभाव तो अच्छा ही होता है !

मंजुल : कैसा प्रभाव ?

दिलीप : अमृत खाने का प्रभाव। मैंने अमृत खा लिया है।

मंजुल : क्या आपने अमृत खा लिया ? : आलमारी की ओर देखकर : ओह ! आपने खा लिया ? अमृत खा लिया ? पिताजी के हजार बार रोकने पर भी आप अपने को वश में नहीं रख सके ?

दिलीप : हाँ, मंजुल ! मेरे मन में न जाने कितनी उत्सुकता थी कि अमृत का कितना चमत्कारपूर्ण प्रभाव होता है ! मैं अपने को नहीं रोक सका।

मंजुल : ओह डाक्टर ! आपको क्या कहूँ ! पिताजी के निर्णय पर आपको विश्वास नहीं हो सका। देखिए, अमृत का प्रभाव—बिना परीक्षण किये—कैसा हो गया !

दिलीप : तो क्या मैं सचमुच निराकार हो गया ?

मंजुल : मुझे तो आप नहीं दीख पड़ते। हाय, अब भाभी का क्या होगा ! वे क्या कहेंगी....कैसे रहेंगी ? आपने कुछ उनका ख्याल तो किया होता ! अमृत की लालच में आप इतने खो गये कि कोई दूसरी बात सोच ही नहीं सके ? अमृत खाने की इतनी उत्सुकता ? इसीलिए आपने मुझसे पानी मँगवाया जिससे मैं यहाँ से चली जाऊँ और आप एकान्त पाकर आलमारी खोल सकें। मैं अभी पिताजी को इसकी सूचना दूँगी। : **पुकार कर** : पिताजी.... पिताजी....डा० दिलीप ने अमृत खा लिया....अमृत खा लिया !

: **यह कहते हुए प्रस्थान** :

दिलीप : **स्वगत** : वास्तव में यह क्या हो गया मुझे ? क्या सचमुच ही मैं किसी को दिखलाई नहीं देता ?....अमृत का प्रभाव मनुष्य पर ऐसा तो नहीं होना चाहिए ! अब क्या होगा !....मेरी पत्नी सत्या....मेरा बेटा मुन्ना....अब मैं पहले जैसे रूप में कैसे आ सकूँगा ! ओह ! मैंने डाक्टर शेखर की बात नहीं मानी ! अब क्या जीवन भर मैं इसी तरह रहूँगा ? कोई क्या मुझे देख नहीं सकेगा ? पुकारकर देखूँ ! सुधीर....ओ सुधीर....

: **नेपथ्य से सुधीर** : आये सरकार !

: **सुधीर का प्रवेश** :

सुधीर : सरकार ! का हुकुम अहै ? हियन तौ कौनौ नाहीं। के हमका बुलाइन ?

दिलीप : हमने तुमको बुलाया। हमें नहीं पहचानते ? हम हैं डाक्टर दिलीप !

सुधीर : डाकधर साहब ! जौन अबहिन आये रहे ? केहर हैं आप ?

दिलीप : अरे, मैं तो सामने ही खड़ा हूँ। मुझे नहीं देखते ?

सुधीर : सरकार ! ई कौन जादू अहै। मुँह तौ कहूँ दिखातै नहिं न ! आवाज कहाँ ते आवत है ?

दिलीप : अरे, मैं बोल रहा हूँ, डाक्टर दिलीप !

सुधीर : फेर चलाकी किहिन ! अरे कौनों भूत-प्रेत तो नाहिंन ! लाई अपन डंडा ?

दिलीप : अबे, क्या बदतमीज़ी करता है।

सुधीर : बदतमीजी, सदतमीजी नाहिंन। जान परत है ऊ साँप का प्रेत अही। अबहिंन हमार नेवरा मारिन है। बगैचा से हियन आय गवा ? मालिक का बुलावत अही। ओहू यहिका ठिकानै लगइहैं।

दिलीप : अबे, आदमी देखकर बात कर।

सुधीर : आदमी ? कौन तरफ से आदमी ! हवा मा प्रेत का आवाज होत है। मालिक नराज न होइ जायँ, नाहीं त मार डंडन के भुरकुस उड़ाय देत। : **पुकारकर** : मालिक, अरे सरकार ! ई साँप कै प्रेत हियनैं आय कै फुफकार मारत अहै ! मालिक.... अरे सरकार ! : **कहता हुआ प्रस्थान करता है।** :

दिलीप : स्वगत : इस गधे ने मुझे साँप का प्रेत ही बना दिया ! अब क्या होगा ! डा० शेखर और मंजुल का व्यवहार भी अब कैसा होगा ! डाक्टर दिलीप ! अब तुम सचमुच ही प्रेत बन गये—तुम अब किसी को भी दिखलाई नहीं देते....

: मंजुल का डाक्टर शेखर के साथ प्रवेश :

मंजुल : देखिए, पिताजी ! डा० दिलीप यहीं खड़े हैं, पर किसी को दिखलाई नहीं देते। इन्होंने बिना आपको बतलाये अमृत खा लिया !

शेखर : डा० दिलीप !

: डा० दिलीप कुछ उत्तर नहीं देते । :

शेखर । पुनः पुकारते हैं : डा० दिलीप !

दिलीप : लज्जित स्वरों में : मुझे क्षमा करें, डा० शेखर ! मैंने बड़ी भूल की ।

शेखर : अच्छा, आप यहीं हैं ? डाक्टर होकर आप इतनी बड़ी भूल कर बैठे ? मैंने आपसे कितनी बार कहा कि बिना परीक्षण के किसी भी वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिए। फिर भी इतनी सामान्य-सी बात आप नहीं मान सके ?

दिलीप : मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था, डाक्टर !

शेखर : किन्तु आप सोच सकते थे कि अमृत चन्द्रमा का तत्त्व है, उसे पृथ्वी के तत्त्व के समान समझना कितनी बड़ी भूल है ! हज़ारों वर्ष हो गये जब चन्द्रमा पृथ्वी से अलग हुआ था, इतने वर्षों में पृथ्वी और चन्द्रमा की भूमि में कितना अन्तर हो गया ! मैंने आपको चन्द्रलोक में भी रोका था और यहाँ भी । फिर भी आप अमृत का लोभ नहीं छोड़ सके ? आप इतने स्वार्थी हो गये कि आप ही अमृत के अधिकारी हों और मानव-समाज उसके गुणों से लाभ न उठा सके । स्वार्थ की भी एक सीमा होती है, डाक्टर !

दिलीप : मैं बहुत लज्जित हूँ, डाक्टर शेखर !

शेखर : लज्जित हैं तो इसी प्रकार जीवन व्यतीत कीजिए। आप स्वतंत्र हैं, चाहे जहाँ जा सकते हैं ।

: घबराये हुए सुधीर का प्रवेश :

सुधीर : सरकार ! साँप क प्रेत हियन आय गवा है !

मंजुल : चुप रह ! भाग जा यहाँ से ।

: सुधीर का सिर झुकाकर प्रस्थान :

दिलीप : देखिए डाक्टर, सुधीर मुझे साँप का प्रेत समझता है ।

शेखर : आपने अपने को इसी स्थिति में कर लिया है ।

दिलीप : आप जो भी कहें मुझसे, किन्तु अब आपको छोड़कर कहाँ जाऊँगा, डाक्टर ?

शेखर : क्यों ? अब तो आप अमृत पान कर देवता हो गये ! अमृत पीने से देवता निराकार हो जाते हैं । आप भी निराकार हो गये । सारे संसार में विचरण कीजिए । लोगों का गला भी काट आइए, तो लोग आपको पकड़ भी नहीं सकेंगे । पहले आप दवा देकर लोगों को जीवन-दान देते थे, अब उनकी हत्या कर शैतान की तरह अट्टहास कीजिए ।

दिलीप : डाक्टर ! मुझ पर दया कीजिए । मैंने भूल की, उसे सुधारने की कृपा कीजिए ।

शेखर : मैं ? मैं सुधारने की कृपा करूँ ? क्या मैं आपकी भूल सुधारने का साहस कर सकता हूँ ? क्या आपको मुझ पर विश्वास है ? और क्या भूल सुधारने की योग्यता मुझमें है ? यदि मेरी योग्यता में आपको विश्वास होता, तो आप इस तरह मेरी इच्छा की अवहेलना न करते !

दिलीप : अब मैं क्या कहूँ, डाक्टर !

शेखर : बार-बार आप मुझ पर व्यंग्य करते थे कि मैं अमृत के उपयोग में देर कर रहा हूँ—व्यर्थ की देर कर रहा हूँ । मुझे ज़रा-ज़रा-सी बातों पर सन्देह होता है । हाँ, सन्देह होता है । यदि सन्देह न होता, तो आपकी ऐसी दशा न होती !

दिलीप : अच्छी बात है, डाक्टर ! मैं जीवित भी हूँ और मर भी गया हूँ । अपने लिए जीवित हूँ, संसार के लिए मर गया हूँ । अब कोई मुझे देख नहीं सकेगा ! ओह ! अब कोई मुझे देख नहीं सकेगा !

मंजुल : पिताजी ! डाक्टर दिलीप को सहायता कीजिए ।

शेखर : मैं क्या सहायता कर सकता हूँ ? वे अभी तक स्वयं अपनी सहायता करते रहे हैं। आगे भी अपनी सहायता आप ही कर लेंगे। अब मेरे बस की बात नहीं रही।

मंजुल : पिताजी ! आपने असंभव को भी संभव कर दिखाया है। डा० दिलीप फिर अपने पहले-जैसे रूप में आ सकते हैं।

शेखर : यदि आ सकते हैं तो वे स्वयं प्रयत्न करें। वे डाक्टर हैं। अभी कुछ अमृत शेष है, उसे भी खा लें।

दिलीप : डाक्टर ! मुझ पर अधिक व्यंग्य न कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।

: नेपथ्य से सत्या का स्वर :

सत्या : मैं आ सकती हूँ ? **: सत्या का प्रवेश :**

दिलीप : **चीखकर** : सत्या !

सत्या : **मंजुल की ओर देखकर** : तुम्हारे भाई का स्वर !........वे कहाँ हैं ? बड़ी देर से उन्हें खोज रही हूँ **: डा० शेखर से :** पिताजी ! प्रणाम करती हूँ।

शेखर : प्रसन्न रहो !

दिलीप : सत्या ! देखो, मैं क्या से क्या हो गया !

सत्या : क्या से क्या हो गए ? लेकिन आप हैं कहाँ ?

शेखर : **तीव्रता से** : सत्या का स्पर्श मत करना, डाक्टर !

दिलीप : **करुण स्वर में** : नहीं करूँगा, नहीं करूँगा ! सत्या ! मैं यहाँ हूँ। तुम्हारे सामने ही हूँ, सत्या ! मेरा लालच मुझे खा गया ! डा० शेखर का कहना मैंने नहीं माना। चोरी से अमृत खा लिया और मेरी हालत ऐसी हो गई कि अब मैं किसी को दिखलाई नहीं देता। आदमी से प्रेत हो गया ! तुम भी तो मुझे नहीं देख रही हो ?

सत्या : नहीं....नहीं....ओह ! डाक्टर ! यह क्या हो गया ! **: सिर पकड़कर सोफा पर बैठ जाती है। :** अब क्या होगा !

अब क्या होगा ! : **सिसकी लेकर :** डाक्टर ! तुम कैसे.... हो....गये...., कैसे....हो गये ! : **मूर्च्छित हो जाती है :**

मंजुल : **सत्या को सम्हालती हुई :** पिताजी ! पिताजी ! सत्या भाभी मूर्च्छित हो गईं !

शेखर : **दुखी होकर :** डाक्टर दिलीप ! देख रहे हो ? तुमने कैसी स्थिति पैदा कर दी ? **मंजुल से :** इन्हें स्मैलिंग साल्ट सुँघाओ।

मंजुल : हाँ, अभी लाती हूँ। : **शीघ्रता से प्रस्थान :**

शेखर : तुम कहाँ हो, डाक्टर ?

दिलीप : मैं सत्या के पास ही हूँ—आपके कहने से मैं उन्हें छुऊँगा नहीं। लेकिन कुछ करना भी चाहूँ तो नहीं कर सकता। डाक्टर ! सत्या मुझे न देखकर ही मूर्च्छित हो गई। वह अब जीवित नहीं रहेगी....नहीं रहेगी। आप उसका जीवन बचा लीजिए। यदि मैं पहले जैसा नहीं हुआ तो वह जीवित नहीं रहेगी। क्या आप मुझे पहले जैसा नहीं कर सकते, डाक्टर ? पहले जैसा....

शेखर : यदि कोशिश भी करूँ तो कह नहीं सकता कि कितने दिन लग जायेंगे। जिस यंत्र से मैं सूक्ष्म शरीर को स्थूल रूप दे सकता था, वह तो मंजुल को बचाने के लिए मैंने तोड़ दिया। छाया देवी ने उसे तुड़वा दिया ! वह यदि होता....

: **मंजुल का स्मैलिंग साल्ट लिये हुए प्रवेश :**

मंजुल : यह 'स्मैलिंग साल्ट' ले आई, पिताजी !

शेखर : उसे सत्या की नाक के पास ले जाओ।

मंजुल : ठीक है : **मंजुल सत्या को 'स्मैलिंग साल्ट' सुँघाती है। सत्या दायें-बायें मुख करके जागती है। :**

शेखर : **जोर से :** बेटी सत्या ! होश में आओ।

सत्या : **अस्फुट स्वरों में :** मैं....मैं....कहाँ हूँ ?

मंजुल : **सिर को सहारा देते हुए :** आप मेरे पास हैं, भाभी !

सत्या : स्मृति आने पर सहसा चौंककर : ओह....ओह....डाक्टर कहाँ हैं ?

दिलीप : शीघ्रता से : मैं तुम्हारे पास ही हूँ, सत्या।

सत्या : करुण स्वर में : कहाँ हो ? मैं नहीं देख पाती....ओह ! यह क्या हो गया !

शेखर : बेटी ! चिन्ता न करो ! मैं डॉ० दिलीप को उनके पहले रूप में लाने की शीघ्र कोशिश करूँगा।

सत्या : अभी कर दीजिए, पिताजी ! अभी कर दीजिए।

शेखर : सोचकर : अच्छी बात है। **: डा० दिलीप से :** डा० दिलीप ! आप बिलकुल मौन होकर उस दूर की कुर्सी पर बैठ जायँ।

सत्या : पिताजी ! यदि ये अच्छे न हुए, तो मैं जीवित नहीं रहूँगी। मैं भी मर जाऊँगी। **: मंजुल से :** बहन ! तुम मुन्ना को सम्हाल लेना !

मंजुल : कैसी निराशा की बातें करती हो, भाभी !

शेखर : ऐसी बात नहीं होगी, बेटी ! मेरे रहते कोई दुर्घटना नहीं हो सकती।

मंजुल : शीघ्र ही कुछ कीजिए, पिताजी !

सत्या : पिताजी ! अमृत खाने से तो आदमी अमर हो जाता है, ये तो अपना शरीर ही खो बैठे।

शेखर : खो नहीं बैठे—शरीर अदृश्य हो गया है। यह अमृत अभी कच्चे रूप में है। इसीलिए तो मैं अपने प्रयोगों से इसका वास्तविक रूप जानना चाहता था। इस अमृत की सुगंधि का परिणाम तो मुझे मालूम हुआ—मेरा प्रताप ठीक हो गया—किन्तु इसके खाने का परिणाम मैं अन्य जन्तुओं पर देखना चाहता था। यदि डाक्टर दिलीप इसे सिर्फ़ सूँघ लेते, तो उनके शरीर की सारी व्याधियाँ समाप्त हो जातीं, किन्तु उन्होंने सूँघने के बजाय

उसे खा लिया ! अमृत की शक्ति सम्हालने के लिए शरीर की प्रकृति को बदलने की आवश्यकता है ।

सत्या : यह मैं क्या जानूँ, पिताजी ! किन्तु अमृत के सम्बन्ध में तो सुना है कि उसे पान करनेवाला अजर-अमर हो जाता है । यहाँ तो इनका शरीर ही नहीं दीखता !

शेखर : मैं ऐसा सोचता हूँ, बेटी ! कि यह अमृत-तत्त्व पदार्थ-रचना और तत्सम्बन्धी बिखरनेवाली शक्तियों से सम्बन्ध रखता है । अणु और परमाणु के विशिष्ट वर्ग-क्रम होते हैं और इनकी शक्तियों की अनेक स्थितियाँ होती हैं । अमृत की प्रेरणा से उत्तेजित होकर शरीर के अणु और परमाणु साधारण स्थिति से उठकर उसी उत्तेजित स्थिति में आ गये और जब इनकी गति लौटी तो उन्होंने असख्य तरंग-रश्मियाँ उत्पन्न कर दीं । यही तरंग-रश्मियाँ पदार्थ पर आवरण का कार्य करने लगीं और पदार्थ —अर्थात् डा० दिलीप—का शरीर अदृश्य हो गया !

सत्या : यह आवरण हट नहीं सकता, पिताजी ?

मंजुल : पिताजी ! यह आवरण तो हट सकता होगा—आखिर वह आवरण ही है । तरंग-रश्मियाँ तो शरीर पर कवच का कार्य कर रही होंगी ।

शेखर : तुमने ठीक समझा, मंजुल ! इसी कवच के उस पार डा० दिलीप का शरीर है । डा० दिलीप के शरीर के परमाणु साधारण स्थिति में थे । अमृत-तत्त्व की मुख्य रेखा से जो ऊर्जा उत्पन्न हुई, तो परमाणु और ऊर्जा में अनुनाद होने लगा, जिसे अँग्रेज़ी में 'रेज़ोनेन्स' कहते हैं । इसी 'रेज़ोनेन्स' से जो अमृत की रश्मि परमाणु पर गिरी, तो सारा शरीर रश्मिमय हो गया । परमाणु के रश्मि में परिवर्तित हो जाने के कारण विघटन-शृंखला स्थापित हो गई और द्रव्य का परिवर्तन ऊर्जा में हो गया । इस समय डा० दिलीप के शरीर में अपार ऊर्जा है

जिसका अनुनाद उनके शरीर के कण-कण में है। इसलिए मैंने डा० दिलीप को रोक दिया कि वे बेटी सत्या का स्पर्श न करें। यदि यह स्थिति अधिक देर तक रही, तो शरीर के समस्त कोष ऊर्जा से आक्रान्त हो सकते हैं।

मंजुल : तो पिताजी ! इस ऊर्जा को समाप्त कर दीजिए न !

सत्या : मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा, पिताजी ! जैसे भी हो, आप इन्हें अपने स्वाभाविक रूप में ला दीजिए।

दिलीप : दूर से : डाक्टर ! कानों में एक विचित्र ध्वनि आने लगी है। मेरे मस्तिष्क में एक चक्र घूमता हुआ-सा जान पड़ता है।

सत्या : **करुण स्वर में** : यह क्या हो रहा है ! : **आँखें बन्द कर लेती है।** :

मंजुल : पिताजी ! आप शीघ्र ही कुछ करें, नहीं तो भाभी का संसार उजड़ जायगा !

शेखर : ऊर्जा के अनवरत प्रवाह के कारण ही कानों में विचित्र ध्वनि आ रही है और मस्तिष्क में चक्र घूमता हुआ-सा जान पड़ता है, यही ऊर्जा है।

मंजुल : यह ऊर्जा रोकी नहीं जा सकती ?

शेखर : रोकी जा सकती है।

मंजुल : **विह्वल होकर** : जल्दी रोक दीजिए, पिताजी ! जल्दी रोक दीजिए।

शेखर : किन्तु इस पर पहले एक प्रयोग और करना होगा।

मंजुल : तो यह प्रयोग जल्दी कर दीजिए, पिताजी !

शेखर : इस ऊर्जा को रोकने में एक ही पदार्थ शक्तिशाली है, और वह पदार्थ है अभ्रक। अभ्रक जिसे अँग्रेज़ी में 'माइका' कहते हैं। यह एक खनिज है जो इंच के हज़ारहवें भाग की पतली-पतली परतों तक में चीरा जा सकता है। इसमें जल जो अमृत को

तरल कर सकता है, चार से छह प्रतिशत तक विद्यमान रहता है। इसमें इतना लोहा है कि इससे शिलाओं का निर्माण हो जाता है, फिर शरीर के कोषों का पुनर्निर्माण भी इससे संभव होगा।

मंजुल : तब तो यह बहुत अद्भुत वस्तु है, पिताजी !

शेखर : और दूसरी बात यह है कि इसकी पतली से पतली परतों में विद्युत् को रोकने की असीम शक्ति है। इसीलिए अनेक विद्युत् यंत्रों में इसका उपयोग होता है। यह विद्युत् का 'असंवाहक' है।

मंजुल : तो जिस विद्युत्मयी ऊर्जा की बात आपने कही, उसे इस अभ्रक के प्रयोग से रोक दीजिए न ? **सत्या की ओर संकेत कर :** देखिए, सत्या भाभी फिर से मूर्च्छित हो गईं !

: सत्या शिथिलता से काउच पर आँखें बन्द कर सहारा लिये हुए है। :

शेखर : अब उन्हें स्वाभाविक रूप से होश में आने दो। जहाँ तक प्रयोग करने की बात है, मुझे अभ्रक का प्रयोग इसी शेष अमृत पर करना होगा : **मंजुल से :** आलमारी से वह अमृत-पात्र उठाओ।

मंजुल : अच्छा, पिताजी ! : **मंजुल शीघ्रता से अमृत-पात्र उठा कर टेबल पर रखती है। :**

मंजुल : लीजिए, पिताजी !

शेखर : मेरे कक्ष में बायीं ओर की आलमारी में एक लाल शीशी है। उसमें अभ्रक का चूर्ण होगा। उसे ले आओ।

मंजुल ; अभी लाई। : **शीघ्रता से प्रस्थान। :**

शेखर : **अमृत को देखते हुए :** तो यह अमृत का शेषांश है। इसी पर पहले अभ्रक का प्रयोग करना होगा। बड़ी से बड़ी विद्युत्-

तरंग इससे रोकी जा सकती है। डा० दिलीप के शरीर में बहनेवाली ऊर्जा भी इससे रोकी जा सकेगी।

: मंजुल लाल शीशी लेकर आती है। :

मंजुल : यह लीजिए, पिताजी ! **: शीशी देती है। :**

शेखर : देखकर : हाँ, यही अभ्रक है। अब इस अमृत पर लाल प्रकाश का विक्षेपण होना चाहिए जिससे अमृत का प्रत्येक परमाणु उत्तेजित हो जाय। पूर्णिमा की रात में उदय होता हुआ चन्द्र भी अरुण आभा लिये होता है।

: मंजुल लाल प्रकाश का बल्ब जलाती है, फिर उस अमृत-पात्र को उस लाल प्रकाश के समक्ष रखती है। डा० शेखर एक नली में अभ्रक भरते हैं और उसे अमृत के अंश पर फूँकते हैं। :

शेखर : अब ठीक है। एक क्षण में ही अमृत की विद्युत्-तरंगें सीमित हो जायँगी और अभ्रक पदार्थ के निर्माण करने में सहायक होगा।

मंजुल : तो फिर ऐसे अमृत का स्पर्श डा० दिलीप से कराया जाय ?

शेखर : नहीं ! अभी एक प्रयोग शेष है। हम सहसा इसे डा० दिलीप को नहीं दे सकेंगे। पहले हमें देखना होगा कि हम किसी सूक्ष्म तत्त्व को इसके सहारे स्थूल रूप दे सकते हैं या नहीं।

मंजुल : यह कौन-सा सूक्ष्म तत्त्व होगा ?

शेखर : मैं सोचूँगा। **: कुछ क्षण तक चिन्ता-मुद्रा में टहलते हैं। फिर सहसा बोल उठते हैं :** एक बात हो सकती है। मंजुल ! हमारे यहाँ स्वरों का रूप है और रागिनी का आकार। यदि तुम इस अमृत के सामने किसी रागिनी का आलाप करो तो शायद वह रागिनी आकार ग्रहण कर ले। इसी आधार पर डा० दिलीप भी आकार ग्रहण कर सकेंगे।

मंजुल : मैं कौन सी-रागिनी गाऊँ, पिताजी ?

शेखर : इस समय गौरी के स्वर उपयुक्त होंगे। षडज स्तर से सप्त स्वर औडव स्वर से हीन होंगे। इस रागिनी का रूप कुछ इस प्रकार का होगा—मुखचन्द्र पर रत्नजटित शीश चन्द्रिका, कानों पर नव रसाल की मंजरी, मकराकृत कुण्डल, गौर अंग पर श्वेत वस्त्र, शरीर पर अनेक मनोहर आभूषण और गुरु गंभीर चाल !

मंजुल : अच्छी बात है।

: मंजुल राग गौरी का आलाप करती है। धीरे-धीरे आरोह होता है। स्टेज़ पर अँधेरा होने लगता है और पीछे सफेद पर्दे पर स्टेज़ के पीछे प्रकाश की छाया से एक नारी मूर्ति उभरती है, जो धीरे-धीरे एक कोने से दूसरे कोने तक चली जाती है। :

शेखर : आलाप को दुहरा दो, मंजुल ! स्वरों में और तीव्रता भरो।

: मंजुल अधिक तीव्रता से आलाप लेती है और स्टेज पर आर्कलैम्प का प्रकाश फैलता है। दाहिने कोण से अत्यन्त सजी हुई देवी की आभा से पूर्ण एक नारी मूर्ति निकलकर स्टेज के मध्य में खड़ी हो जाती है। आलाप की समाप्ति होते-होते वह गुरु गंभीर चाल से चलकर बायें कोण में चली जाती है। :

शेखर : उल्लास से : प्रयोग सफल हो गया ! सफल हो गया ! राग गौरी के सूक्ष्म स्वरों को स्थूल रूप प्राप्त हो गया। अमृत की ऊर्जा अभ्रक से सीमित होने के कारण स्वरों को आकार में बदलने में सहायक हो गई है। अब इसका प्रयोग डा० दिलीप पर किया जा सकता है।

सत्या : मूर्च्छा से जागते हुए : यह....कौन-सी....रागिनी....थी जो मेरे

रोम-रोम को छूकर मुझे जगा रही थी....वह रागिनी....वह....
रागिनी....

मंजुल : **प्रसन्नता से :** भाभी ! जागो, प्रयोग सफल हो रहा है ।

सत्या : **रुकते स्वरों में :** सफल....हो....रहा है ? सफल हो....रहा है....ओह....पिताजी ! आप धन्य हैं....धन्य हैं !

शेखर : मंजुल ! अब यह अमृत-पात्र डा० दिलीप के समक्ष उस टेबल पर रख आओ । वे इसे जैसे ही खाएँगे, वैसे ही उन पर से ऊर्जा का कवच हट जायगा और वास्तविक पदार्थ का बोध होगा । कुछ ही देर में उनका शरीर प्रकट हो जायगा ।

मंजुल : अच्छी बात है !

मंजुल टेबल पर अमृप-पात्र रखती है । :

शेखर : डा० दिलीप ! अब आप धीरे-धीरे इस अमृत को खाने का प्रयत्न करें ।

दिलीप : डाक्टर ! आपके प्रयोग संसार में अपने ही ढंग के हैं । आपकी प्रतिभा का जवाब आज संसार में नहीं है । आपने मुझे और मेरे परिवार को जीवन-दान दिया है । आपके कहने के अनुसार ही मैं यह अमृत खा रहा हूँ ।

: एक क्षण स्टेज पर अंधकार होता है । थोड़ी देर बाद जब प्रकाश होता है, तो डा० दिलीप कुर्सी पर बैठे हुए दृष्टिगत होते हैं । :

सत्या : **उल्लासपूर्वक :** मिल गये....डाक्टर फिर मिल गये । **: सहमकर डॉ० शेखर से :** मैं उन्हें छू सकती हूँ ?

शेखर : एक बार नहीं, सौ बार छू लें ।

सत्या : **उतावली से :** डाक्टर....! **पैरों से लिपट जाती है । :**

दिलीप : उठो, उठो, सत्या ! **: पकड़कर उठाते हैं । :** मेरी मूर्खता से तुम्हें बहुत कष्ट हुआ ! डा० शेखर की कृपा न होती तो हम लोग दुबारा नहीं मिल सकते थे ।

शेखर : कोई बात नहीं, डा० दिलीप ! यह चन्द्रलोक का अमृत तो समाप्त हो ही गया। अब हम आयुर्वेद के अनुसार उन समस्त जड़ी-बूटियों की खोज करेंगे जिससे हम अपनी पृथ्वी पर ही अमृत की प्राप्ति कर सकें। आज से पृथ्वी के अमृत की खोज आरंभ हो ! और हमारा देश संसार में मानवता को नया रूप दे दे !

पृष्ठ संगीत और यवनिका-पतन

□□